CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सायणाचार्यविरचिता

अथर्ववेदभाष्यभूमिका

(हिन्दीभाष्यसहिता)

डॉ० वामदेवमिश्रः

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सायणाचार्यविरचिता

अथर्ववेदभाष्यभूमिका

(हिन्दीभाष्यसहिता)

संस्कृत ... विद्या भवन, नई दिल्ली
20-1-98
Bharatiya Vidya Bhavan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
1047

डॉ० वामदेव मिश्र

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशक
गीता संस्कृत प्रकाशन
के० २०/१४० राजमन्दिर
वाराणसी–१

मूल्य : ३·००
आवृत्ति–प्रथम १०००

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
1047

मुद्रक
स्वस्तिक मुद्रणालय
गोलघर, वाराणसी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपक्रम

विश्ववाङ्मय में मन्त्रब्राह्मणात्मक वैदिक वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें मन्त्रभाग का संग्रह वैदिक संहिताओं में है। ब्राह्मण भाग प्रायः मन्त्र भाग का व्याख्यान रूप हैं। इनके भाष्य की अलग-अलग स्वतन्त्र अति प्राचीन परम्पराएँ हैं। वैदिक भाष्यकारों में सायणाचार्य का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने प्रायः सभी वेदों पर विद्वत्तापूर्ण प्रौढपाण्डित्य के साथ भाष्य प्रणयन किया है। साथ ही प्रत्येक भाष्य-प्रणयन के प्रारम्भ में अलग-अलग स्वतन्त्र भाष्य-भूमिकाओं का उपनिबन्धन किया है। इन भाष्य-भूमिकाओं में वैदिक विवादपूर्ण विविध तथ्यों का प्रतिपादन है। इनमें से अन्यतम अथर्ववेदभाष्यभूमिका है।

इस भाष्यभूमिका में यज्ञकर्म में अथर्ववेद की उपयोगिता, अथर्ववेद के उपवेद, अथर्ववेद की प्रशंसा, अध्ययन विधिवाक्य का विचार, वेद की प्रामाण्य, वेद का अपौरुषेयत्व, शब्द का नित्यत्व ऋक् यजु तथा साम की व्याख्या के बाद अथर्ववेद के व्याख्यान के औचित्य का विचार, अथर्ववेद की शाखायें, कौशिक वैतानिक नक्षत्रकल्प आङ्गिरस कल्प, शान्तिकल्प तथा अथर्वपरिशिष्ट में वर्णित विषयों का सङ्कलन कर्मों का त्रैविध्य तथा आथर्वण कर्मों के द्वैविध्य का प्रतिपादन है।

प्रस्तुत प्रणयन में पाठभेद का सङ्कलन विश्वेश्वरानन्द शोधसंस्थान से प्रकाशित सायणाभाष्य सहित अथर्ववेद संहिता के संस्करण के आधार पर किया गया है। मूलांश के साथ हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है जिसमें मूलांशगत पदों का यथाशक्य अनुवाद एवं उसका कोष्ठ में प्रयोग भी किया गया है।

इस ग्रन्थ के संस्करण में विशेषतया प्रोत्साहन का श्रेय डॉ० अमरनाथ पाण्डेय, एम० ए० डि० फिल्, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ को है जिससे यह कार्य पूर्ण हुआ। इसके लिए मैं डॉ० पाण्डेय जी का आभारी हूँ साथ ही प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इस कार्य में सहयोगियों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। अनवधानता एवं त्वरा के कारण यत्रतत्र त्रुटियाँ रह गई है जिनके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। विज्ञजन कृपया सुधार कर अनुगृहीत करेंगें।

विनीत

—वामदेव मिश्र

संस्कृत–विभाग

काशी विद्यापीठ

दिसम्बर १९७८ ई०

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः।
निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्॥
तस्माद् राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम्।
दानसम्मानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत्॥

—अथर्वपरिशिष्ट

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुक्रम

१. अथ मङ्गलाचरणम् १

२. यज्ञकर्मणि अथर्ववेदस्योपयोगिता ३

३. अथर्ववेदस्योपवेदाः १०

४. पुराणादिषु अथर्ववेदप्रशंसा ११

५. अध्ययनविधिवाक्ये शब्दभावना अर्थभावना च १२

६. भावना लक्षणम् १३

७. अध्ययनविधौ साध्यपक्षः १६

८. अध्ययनविधौ प्रभाकरमतं तस्य खण्डनञ्च १९

९. वेदस्य स्वतः प्रमाण्यमिति सिद्धान्त-विषये विविधा विप्रतिपत्तयः २७

१०. वेदापौरुषेयत्वनिरूपणम् ३८

११. शब्दनित्यत्वम् ४२

१२. अथर्ववेदव्याख्यानस्य त्रयीव्याख्यानान्तर्योपपादनम् ५१

१३. अथर्ववेदशाखाविचारः ५२

१४. कौशिकसूत्रवर्णितकर्मनिरूपणम् ५३

१५. वेतानिकसूत्रकर्मनिरूपणम् ५६

१६. नक्षत्रकल्पसूत्रकर्मनिरूपणम् ५६

१७. अंगिरसकल्पकर्मनिरूपणम् ५८

१८. शान्तिकल्पकर्मनिरूपणम् ५८

१९. अथर्वपरिशिष्टराज्याभिषेकानुष्ठानविषयः ५८

२०. कर्मणां त्रैविध्यम् ५९

२१. आथर्वणकर्मणां द्वैविध्यम् ६१

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदसङ्केतानुक्रमणी

आ० ध०	आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्
आश्व०	आश्वलायन श्रौतसूत्रम्
ऋ०	ऋग्वेद संहिता
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
क	मैसूर पाण्डूलीपि १
ख	,, ,, २
गो० ब्रा०	गोपथ ब्राह्मण
जै०	जैमिनीय ब्राह्मण
तै० आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै० सं०	तैत्तिरीय संहिता
नृ० पु० ता०	नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्
प०	(अथर्व) परिशिष्ट
पा० अष्टा०	पाणिनीय अष्टाध्यायी
बृ० आ०	बृहदारण्यक उपनिषद्
म० स्मृ०	मनुस्मृति
मी० भा० वि०	मीमांसा भाष्य विवरण
मु०	मुण्डकोपनिषद्
या० स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति

संशोधन—विषय संख्या क्रम ४,४,५,६,७,९, के स्थान में ४,५,६,७,८,९, शुद्ध है। विषय क्रम ठीक है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथर्ववेदसंहितायाः

भाष्यभूमिका

(१)

अथ मङ्गलाचरणम्

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ १ ॥
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ २ ॥
अविद्याभानुसंतप्तो विद्यारण्यमहं भजे ।
यदर्ककरतप्तानामरण्यं प्रीतिकारणम् ॥ ३ ॥
तत्कटाक्षेण तद्रूपं दधतो बुक्कभूपतेः ।
अभूद्धरिहरो राजा क्षीराब्धेरिव चन्द्रमाः ॥ ४ ॥

---

(१)

मङ्गलाचरण

समस्त अर्थों के उपक्रम (प्रारम्भ) में सुन्दर चित्त वाले वागीशादि जिसे नमस्कार करके कृतकृत्य हो जाते हैं, उन गणेश जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

समस्त वेद जिसके निःश्वास रूप हैं, जिसने सम्पूर्ण जगत् का निर्माण वेदों के द्वारा किया, उन विद्यातीर्थ महेश्वर की मैं वन्दना करता हूं ॥ २ ॥

अज्ञानरूपी सूर्य के द्वारा सन्तप्त मैं विद्यारण्य स्वामी का भजन करता हूँ, जो कि सूर्य की किरणों से सन्तप्त जनों के लिए वन कीं भाँति आनन्ददायी हैं ॥ ३ ॥

उनकी कृपाकटाक्ष के कारण उनके रूप को धारण करते हुए बुक्काधिपति से हरिहर नामक राजा क्षीरसागर से चन्द्रमा की भाँति प्रकट हुए ॥ ४ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विजितारातिव्रातो वीरश्रीर्हरिहरक्षमाधीशः ।
धर्मब्रह्माध्वन्यः कलिं स्वचरितेन कृतयुगं कुरुते ॥ ५ ॥
साधयित्वा महीं सर्वां श्रीमान् हरिहरेश्वरः ।
भुङ्क्ते बहुविधान् भोगानसक्तो रामवत् सुधीः ॥ ६ ॥
विजयी हरिहरभूपः समुद्वहन् सकलभूभारम् ।
षोडश[1] महान्ति दानान्यनिशं सर्वस्य तृप्तये कुर्वन् ॥ ७ ॥
तन्मूलभूतमालोच्य वेदमाथर्वणाभिधम् ।
आदिशत् सायणाचार्यं तदर्थस्य प्रकाशने ॥ ८ ॥
ये पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात् ।
कृपालुः सायणाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥
व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम् ।
ऐहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति ॥ १० ॥

समस्त शत्रुमण्डल को जीतने वाले एवं धर्म और ब्रह्म के मार्ग का अनुसरण करने वाले पराक्रमी शोभा-सम्पन्न पृथ्वीपति महाराज हरिहर ने कलियुग को कृतयुग (सतयुग) में परिणत कर दिया ॥ ५ ॥

शोभन प्रज्ञा वाले तथा शोभा-सम्पन्न श्री हरिहरेश्वर ने समस्त पृथ्वी को स्वाधीन करके राम की भाँति ही अनासक्त भाव से अनेक प्रकारों के भोगों (वैभवों) का उपभोग कर रहे हैं ॥ ६ ॥

विजयशाली हरिहर नरेश ने समस्त भूलोक के भार का सम्यग् रीति से वहन करते हुए, समस्त प्राणियों की तृप्ति के लिए सोलह महान् दानों को करते हुए— ॥ ७ ॥

उस (दानकर्म) के मूलाधारभूत आथर्वण नामक वेद का अनुशीलन करके सायणाचार्य को उसके अर्थ का प्रकाश करने के लिए आदेश दिया ॥ ८ ॥

जो पूर्व एवं उत्तरमीमांसायें थी उनकी 'अतिसंग्रह' के द्वारा व्याख्या करके कृपामय सायणाचार्य वेद का अर्थ बतलाने के लिए उद्यत हुए हैं ॥ ९ ॥

परलोक में फलप्रदान करने वाले वेदत्रयी का व्याख्यान करके अब [आचार्य] इहलोक एवं परलोक में भी फल प्रदान करने वाले चतुर्थ वेद की व्याख्या करने की अभिलाषा करते हैं ॥ १० ॥

१. षोडशो क, ख ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(२)

यज्ञकर्मणि अथर्ववेदस्य उपयोगिता

ननु "यज्ञं व्याख्यास्यामः। स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते" इति स्मरणाद् ऋग्यजुःसाम्नामेव फलवत्कर्मशेषत्वम् अवसीयते। प्रादुर्भावोऽपि त्रयाणामेव श्रूयते। "त्रयो वेदा अजायन्त, ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्" इति।

"ऋचः सामानि जज्ञिरे।
यजुस्तस्माद् अजायत" इति च॥

संख्यानियमाच्च श्रूयते। "वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः"। "यम् ऋषयस्त्रयिविदा विदुः। ऋचः सामानि यजूंषि" इति॥

धर्मविशेषश्रवणाच्च त्रित्वम् अवगम्यते। "उच्चैर्ऋचा क्रियते उपांशु यजुषा उच्चैः साम्ना" इति। "यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद् दृढम्" इति। ते च ऋगादयो विस्तरेण व्याख्याताः। अस्य तु वेदस्य त्रयीव्यतिरिक्तत्वेन कर्मशेषत्वाभावाद् न व्याख्यानार्हता।

(२)

यज्ञ-कर्म में अथर्ववेद की उपयोगिता

पूर्वपक्ष :—"अब यज्ञ की व्याख्या करेंगे। वह तीनों वेदों के द्वारा विहित होता है"[1] इस स्मरण (स्मृति वाक्य) के अनुसार ऋग्, यजु एवं सामवेद का ही फलप्रदायक कर्मों से सम्बद्ध होना निश्चित किया जाता है। उत्पत्ति भी इन्हीं तीनों की सुनी जाती (श्रुति सिद्ध) है, "तीन वेद उत्पन्न हुए, ऋग्वेद ही अग्नि से, यजुर्वेद वायु से एवं सामवेद आदित्य से उत्पन्न हुआ।"[2] एवं—"ऋग्वेद एवं सामवेद उत्पन्न हुए, उसी से यजुर्वेद भी उत्पन्न हुआ।"[3]

संख्या व्यवस्था भी श्रुति सिद्ध है, "तीनों वेदों के साथ सूर्य आ रहा है",[4] एवं "तीनों वेदों के ज्ञाता ऋषियों ने जिसे ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद [के रूप में] जाना।"[5]

धर्मविशेष का श्रवण होने से भी इन (वेदों) का तीन होना ज्ञात होता है—"उच्च स्वर से ऋङ्मन्त्र द्वारा, उपांशु स्वर से यजुर्मन्त्र द्वारा पुनः उच्च स्वर से साममन्त्र द्वारा [कर्मकाण्ड] किया जाता है,"[6] एवं "यज्ञ के सम्बन्ध

१. सत्या० सू०, १।१।
२. ऐ० ब्रा०, ५।३२।
३. ऋ०, १०।९०।९।
४. तै० ब्रा०, ३।१२।९।१।
५. तै० ब्रा०, १।२।१।२६।
६. सत्या० सू०, १।१।१।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथोच्यते। ऋग्वेदेन हौत्रमेव प्रतिपाद्यते, यजुषा आध्वर्यवम्, साम्ना औद्गात्रम् इति वेदत्रयस्य प्रतिनियतप्रयोगप्रतिपादनपरत्वात् [1]अवशिष्टब्रह्मकर्तव्यताप्रतिपादकश्चतुर्थो वेदो व्याख्येयः। तदभावे यज्ञशरीरस्य अनिष्पत्तेरिति। नैवम्। उक्तैरेव त्रिभिर्वेदैः क्रत्वपेक्षितस्य ब्रह्मकर्तव्यस्यापि सिद्धिः। तथा च ऐतरेयब्राह्मणे—"यद् ऋचैव हौत्रं[2] क्रियते यजुषाऽऽध्वर्यवं साम्नोद्गीथं व्यारब्धा त्रयी विद्या भवति। अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात्" इति। स्मर्यते च—

"ऋग्वेदेन होता करोति सामवेदेनोद्गाता यजुर्वेदेनाध्वर्युः सर्वैर्ब्रह्मा" इति।

अतश्चतुर्णां होत्रादीनाम् ऋत्विजाम् अपेक्षितस्य क्रियाकलापस्य त्रय्यैव[3] सिद्धत्वात् न चतुर्थस्य वेदस्याकाङ्क्षास्ति कुतस्तस्य व्याख्यानचिन्तेति॥

में जो कुछ साममन्त्रों एवं यजुर्मन्त्रों के द्वारा किया जाता है वह शिथिल होता है और जो ऋङ्मन्त्रों के द्वारा किया जाता है वह दृढ़ (पुष्ट) होता है",[4] तथा वे ऋक् आदि पहले ही व्याख्यात हो चुके हैं। इस वेद का अन्य तीनों वेदों से अवशिष्ट कर्म न रहने से इसका व्याख्यान उचित नहीं है।

यदि यह कहा जाय कि ऋग्वेद के द्वारा होतृकर्म यजुर्वेद के द्वारा अध्वर्युकर्म एवं सामवेद के द्वारा उद्गातृ-कर्म प्रतिपादित किया जाता है, इस भाँति इन तीनों वेदों के निश्चित या सीमित प्रयोग के प्रतिपादन से सम्बद्ध होने के कारण अवशिष्ट ब्रह्मकर्म का प्रतिपादक यह चतुर्थ वेद भी व्याख्या योग्य है क्योंकि इसके अभाव में यज्ञरूपी शरीर की निष्पत्ति नहीं हो सकती है तो ऐसा नहीं है। उन्हीं उक्त तीनों वेदों के द्वारा क्रतुकार्य में अपेक्षित ब्रह्मकर्म की भी सिद्धि हो जाती है। जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण की यह श्रुति है," जो कि ऋग्वेद के द्वारा होतृकर्म, यजुर्वेद के दारा अध्वर्युकर्म एवं सामवेद के द्वारा उद्गीथ (उद्गातृ-कर्म) प्रारम्भ किया जाता है और यही त्रयी विद्या है। तब ब्रह्मत्व (ब्रह्मकर्म) किसके द्वारा किया जाता है? इसके उत्तर में कहते हैं कि 'त्रयी विद्या के द्वारा' अर्थात् तीनों वेदों के द्वारा ब्रह्मत्व का सम्पादन करे।"[5] स्मृति भी कहती है। "ऋग्वेद के द्वारा अध्वर्यु एवं इन तीनों के द्वारा ब्रह्मा अपना कार्य-सम्पादन करे।"

इस भाँति होता आदि चारों ऋत्विजों के द्वारा अपेक्षित क्रियाकलाप की इन्हीं तीनों के द्वारा ही सिद्धि हो जाने से चतुर्थ वेद की अपेक्षा ही नहीं है, फिर उसके व्याख्यान की चिन्ता क्यों?

---

१. अवशिष्ट क, ख। २. हौत्रं क, ख। ३. त्रय्येव क, ख।
४. तै० सं०, ६।५।१०।३। ५. ऐ० ब्रा०, ५।३३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्रोच्यते । हौत्रम् आध्वर्यवम् औद्गात्रमिति समाख्यया[1] त्रयाणामपि वेदानां प्रतिनियतहोत्रादिकर्तव्यप्रतिपादनपरत्वावगमात् न ब्रह्मकर्तव्यप्रतिपादने तात्पर्यं संभवति। यथा अन्यपरस्य यजुर्वेदस्य होतृकर्तव्यतायाम्, यथा वा तथाविधस्य ऋग्वेदस्य अग्निहोत्रे । एवं त्रय्यां तत्र तत्र प्रतिपादितं यद् ब्रह्मत्वम् तद् अथर्ववेदसिद्धमेव लेशेनोक्तम् इति अतात्पर्यविषयत्वात् अकृत्स्नत्वाच्च नादरणीयम्। अकृत्स्नत्वमेव अभिप्रेत्य शाखान्तरोक्तं हौत्रं नानुष्ठेयम् इति आश्वलायनेनोक्तम्। "तद्ये केचन छान्दोग्ये वाध्वर्यवे वा हौत्रामर्शाः समाम्नाता न तान् कुर्याद् अकृत्स्नत्वाद्धौत्रस्य" इति। अत एव वाङ्मनसनिर्वर्त्यस्य यज्ञशरीरस्य अर्धमेव त्रिभिर्वेदैर्निष्पाद्यते। अर्धान्तरं तु अथर्ववेदेनैवेति श्रूयते। "प्राजापतिर्यज्ञम् अतनुत। स ऋचैव हौत्रम्[2] अकरोद्

उत्तर पक्ष :—यहाँ बतलाते हैं। होतृकर्म, अध्वर्युकर्म एवं उद्गातृकर्म—इस भाँति समाख्या के द्वारा क्रमशः तीनों के होतृत्व आदि प्रति नियत (परिसीमित) कर्तव्य के प्रतिपादन से सम्बद्ध होने के कारण ब्रह्मकर्तव्य के प्रतिपादन में इनका तात्पर्य सम्भव ही नहीं है जिस भाँति कि अन्य परक (अन्य के कर्तव्य से सम्बन्धित) यजुर्वेद का होतृकर्म में अथवा जिस भाँति उस प्रकार के (अन्यपरक) ऋग्वेद का अग्निहोत्र में (तात्पर्य नहीं लक्षित होता)। इस प्रकार उस वेदत्रयी में विभिन्न स्थलों पर जो ब्रह्मत्व प्रतिपादित है वह अथर्ववेद द्वारा सिद्ध ब्रह्मत्व का ही किञ्चिन्मात्र उल्लेख है, अतः तात्पर्य विषय न होने से तथा अपूर्ण होने से वह आदरणीय नहीं है।

शाखान्तर में कथित अपूर्ण होतृत्व को ही अभिप्रेत मानकर उनका अनुष्ठान नहीं किया जा सकता यह आश्वलायन के द्वारा कहा गया है-"जो कुछ छान्दोग्य अथवा आध्वर्यव (यजुर्वेद) में हौत्रामर्श (होतृकर्म) कहे गये हैं उन्हें अनुष्ठित न करे क्योंकि वहाँ होतृकर्म पूर्ण नहीं है।"[3] इस प्रकार वाणी एवं मन के द्वारा निर्वर्तनीय (सम्पादनीय) यज्ञ शरीर को (वाणी रूप) अर्धांश ही उन तीनों वेदों के द्वारा निष्पादित होता है। शेष अर्धांश (मन) तो अथर्ववेद के द्वारा ही निष्पन्न होता है। ऐसी श्रुति है—"प्रजापति ने यज्ञ का विस्तार किया। उन्होंने ऋचा के द्वारा ही होतृकर्म, यजुर्वेद द्वारा ही अध्वर्युकर्म, सामवेद के द्वारा ही उद्गातृकर्म एवं अथर्ववेद तथा अङ्गिरस के द्वारा ही ब्रह्मत्व का अनुष्ठान किया" ऐसा प्रक्रम करके "वहीं यह तीनों वेदों के द्वारा यज्ञ का एक पक्ष (वाक्) संस्क्रियमाण होता है। मन के द्वारा ही ब्रह्मा यज्ञ का अन्य (शेष) पक्ष को संस्कृत करता है।"[4]

Funding by IKS-MoE

१. सामाख्यया क, ख। २. होत्रम् क, ख। ३. आश्व०, १।१३। ४. गो० ब्रा०, ३।२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यजुषाध्वर्यवं साम्नौद्गात्रम् अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्" इति प्रक्रम्य "स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते। मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति" इति। ऐतरेयब्राह्मणेऽपि त्रयीनिष्पाद्य एकः पक्षः मनोनिष्पाद्यः परः पक्ष इति श्रुतम्। "अयं वै यज्ञो योऽयं पवते। तस्य वाक् च मनश्च वर्तन्यौ। वाचा च हि मनसा च यज्ञोऽवर्तत। इयं वै वाग्। अदो मनः। तद् वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति। मनसैव ब्रह्मा संस्करोति" इति। एतदेवाभिप्रेत्य गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे प्रश्नपूर्वकम् अथर्वविद एव ब्रह्मत्वम् आम्नातम्। "अथ ह प्रजापतिः सोमेन यक्ष्यमाणो वेदान् उवाच। कं वो होतारं वृणीयाम्।[१] कम् अध्वर्युम्। कम् उद्गातारम्। कं ब्रह्माणम् इति। ते ऊचुः। ऋग्विदमेव होतारं वृणीष्व। यजुर्विदम् अध्वर्युम्। सामविदम् उद्गातारम्। अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्। तथा हास्य यज्ञः[२] × × चतुष्पात् प्रतितिष्ठति" इति। तत्रैव विपक्षबाधश्च श्रुतः। "अथ चेद् नैवंविदं ब्रह्माणं वृणुते दक्षिणत एवैषां यज्ञो रिच्यते" इति। "यथैकपात् पुरुषो यन् अनुभयचक्रो[3] वा रथो वर्तमानो भ्रेषं न्येति एवमेवास्य यज्ञो भ्रेषं न्येति" इति।

ऐतरेय ब्राह्मण में भी तीनों के द्वारा सम्पाद्य एक पक्ष एवं मन के द्वारा सम्पाद्य द्वितीय पक्ष सुना गया है। "जो यह पवमान होता है, वही यज्ञ है। उसकी वाणी एवं मन वर्तनियाँ हैं। वाणी एवं मन के द्वारा ही यज्ञ विद्यमान था। यही वाणी है। वह मन है। तो वाणी के द्वारा ही तीनों विद्याओं (वेदत्रयी) के माध्यम से यज्ञ का एक पक्ष परिष्कृत करते हैं, मन के द्वारा ही ब्रह्मा परिष्कृत करता है।"[४] इसी को अभिप्रेत करके गोपथ ब्राह्मण के अन्तर्गत पूर्वभाग में प्रश्न पूर्वक अथर्ववेद के ज्ञाता का ही ब्रह्मत्व प्रतिपादित किया गया है—"तत्पश्चात् सोम के द्वारा यक्ष्यमाण होते हुए प्रजापति ने वेदों को कहा—मैं किसे तुम लोगों का होता, किसे अध्वर्यु, किसको उद्गाता एवं किसको ब्रह्मा वरण करूँ?" वे बोले "ऋग्वेद के ज्ञाता को ही होता, यजुर्वेद के ज्ञाता को अध्वर्यु, सामवेद के ज्ञाता को उद्गाता एवं अथर्व तथा अङ्गिरस् के ज्ञाता को ब्रह्मा वरण कीजिए। तभी इस यजमान का यज्ञ प्रतिष्ठित होता है।"[५] वहीं पर विपक्ष का बाध भी सुना गया है—"अब यदि इस प्रकार के ज्ञाता को ब्रह्मा न वरण किया जाय, तो दक्षिण भाग से ही इनका (यह) यज्ञ रिक्त हो जाता है।"[६] एवं "जिस भाँति एक ही पैर वाला पुरुष चलता हुआ गिर पड़ता हैं तथा एक ही ओर पहिए वाला रथ भी चलता हुआ गिर पड़ता है उसी भाँति इसके (द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ) भ्रष्ट हो जाते हैं।"[७]

१. वृणीय ग। २. 'यज्ञश्चतुर्षु लोकेषु चतुर्षु वेदेषु चतुर्षु होत्रासु चतुष्पाद् यज्ञः प्रतितिष्ठति' इति सकलः पाठः। ३. [illegible] ४. ऐ० ब्रा०, ५।३३। ५. गो० ब्रा०, २।२४। ६. गो० ब्रा०, २।२४। ७. गो० ब्रा०, ३।२।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते" इति स्मृतिस्तु उदाहृतश्रुत्यनुसारेण मुख्यस्य अथर्वविदोऽसम्भवे तत्तच्छाखासु यावदुक्तब्रह्मत्वमात्रेणापि क्रतुशरीरनिष्पत्तिर्भवति इत्येवमभिप्राया। "त्रय्याविद्ययेति ब्रूयात्" इति श्रुतिरपि [1]प्रकृतव्याहृतित्रयापेक्षत्वात् अविरुद्धा। "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदाऽथर्वाङ्गिरसः" इति वाजसनेयकश्रुत्यनुसारेण त्रयाणाम् उत्पत्तिश्रुतिः उपलक्षणतया व्याख्येया॥

"वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः" इति च श्रुतिः "ऋग्भिः पूर्वाह्णे" इति प्रकृतकालत्रयाभिप्रायेण। वेदानां चतुष्ट्वस्य सर्वत्र श्रुतत्वाद्। तथा चाग्रे तापनीयोपनिषदि आम्नायते[2] "ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः" इति। मुण्डके च—"तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः" इति॥

"यम् ऋषयस्त्रयिविदा[3] विदुः। ऋचः सामानि यजूंषि" इति। त्रैविध्यं तु वेदगतमन्त्राभिप्रायम्। तद् उक्तं जैमिनिना—"तच्चोदकेषु[4] मन्त्राख्या"। "तेषाम्

"वह तीन वेदों के द्वारा विहित होता है" यह स्मृति वाक्य तो उदाहृत श्रुति वाक्य के अनुसार मुख्य अथर्ववेद के ज्ञाता के असम्भव (दुष्प्राप्य) होने पर विभिन्न शाखाओं में जितना ब्रह्मत्व कथित है, उतने मात्र से ही यज्ञ शरीर की निष्पत्ति होती है इस अभिप्राय से युक्त है।

"तीनों विद्याओं के द्वारा, यह बोले"[5] यह श्रुति भी प्रस्तुत व्याहृतित्रय (त्रयी विद्या) की अपेक्षा करने के कारण विरुद्ध नहीं है। जो यह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्वाङ्गिरस हैं वे इस महान् प्राणी (परमपुरुष) का निःश्वासभूत ही "हैं"[6] इस वाजसनेयक श्रुति के अनुसार तीनों वेदों की उत्पत्तिश्रुति (शेष चतुर्थ) के उपलक्षण रूप में ही व्याख्यानयोग्य है।

"तीन वेदों के साथ सूर्य आ रहा है" यह श्रुति भी "ऋचाओं के द्वारा पूर्वाह्ण में"[7] इस प्रकार प्रस्तुत कालत्रय के अभिप्राय में है क्योंकि वेदों का चतुष्टयत्व सर्वत्र श्रुतिसिद्ध है। तथा आगे तापनीयोपनिषद् में भी कहा जाता है—"ऋग्, यजुः, साम एवं अथर्वण - ये चारों वेद हैं।"[8] मुण्डक में भी "वहाँ अपरा (विद्या) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद रूप है।"[9]

"जिसे वेदत्रयी के ज्ञाता ऋषियों ने ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद के रूप में जाना"[10] "यह त्रैविध्य तो वेदगत मन्त्रों के अभिप्राय से (उक्त) है।"[11] जैसा कि जैमिनि के द्वारा उक्त है, "वह प्रेरक (चोदक) भाग में मन्त्र के रूप में हैं"[12],

१. प्रकृति क, ख। २. आम्नास्यते घ। ३. त्रैविदा क, ख।
४. तत्रोदकेषु क, ख। ५. ऐं० ब्रा०, ५।३३। ६. बृ० आ०, ४।४।१०।
७. तै० ब्रा०, ३।१२।९।१। ८. नृ० पू० ता०, १। ९. मु० १।१।
१०. तै० ब्रा०, १।२।१।२२। ११. जै०, २।१।३२। १२. जै०, २।१।३५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था" । "गीतिषु सामाख्या" । "शेषे यजुःशब्दः" इति । तद् अस्मिन्नपि वेदे विद्यत इति न चतुष्ट्वव्याकोपः ।

उच्चैष्ट्वादिधर्मनियमोऽपि अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात् सामवेद इत्युपक्रमवाक्यगतवेदत्रयापेक्ष इति न विरोधः ।

ननु अस्मिन् वेदे मन्त्राणाम् ऋगाद्युक्तलक्षणयोगात् तदन्यतमव्यपदेशभावत्वं युक्तम् । नैव दोषः । अथर्वाख्येन ब्रह्मणा दृष्टत्वात् तन्नाम्ना अथर्ववेदो व्यपदिश्यते । तथा हि । पुरा खलु सृष्टयर्थं स्वयंभु ब्रह्म तपस्तेपे । तस्मात् तप्यमानात् सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्यः स्वेदधारा अजायन्त । तासु स्वेदजातासु अप्सु स्वां छायां पश्यतो रेतश्चस्कन्द । तद्रेतःसहिता आपो द्विरूपा अभवन् । तत्रैकतः स्थितं रेतो भृज्ज्यमानं सत् भृगुर्नाम महर्षिरभवत् । स एव भृगुः स्वोत्पादकस्य तिरोहितस्य ब्रह्मणो दर्शनाय "अथर्वाग्[१] एनम् एतास्वेवाप्स्वन्विच्छ" इति अशरीरया वाचोक्तत्वात् अथर्वाख्योऽप्यभवत् । [२]अत्रशिष्टरेतोयुक्ताभिरद्भिरावृतस्य वरुणशब्दवाच्यस्य

"उनमें ऋक्, जहाँ अर्थ के अनुसार (छन्दों) की पाद व्यवस्था है"[३], गीतिओं में साम नाम से उक्त है"[४], 'शेष यजुः शब्द वाची है"[५], वह इस वेद में भी है इस भाँति चतुष्टयत्व की हानि नहीं है ।

उच्चैष्ट्व (उच्च स्वर में उच्चारण) आदि धर्मों का नियम भी "अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद—इस भाँति उपक्रम वाक्यगत वेदत्रयी की अपेक्षा करते हैं, अतः कोई विरोध नहीं है ।

यदि यह कहें कि इस वेद में ऋक् आदि के उक्त लक्षणों के कारण इसका उन्हीं में से कोई एक नाम के द्वारा व्यपदेश (अभिधान) करना उचित है । तो यह दोष नहीं है । अथर्वा नामक ब्रह्मा के द्वारा दृष्ट होने से उन्हीं के नाम से यह वेद व्यपदिष्ट होता है । जैसा कि प्रसिद्ध है । प्राचीन समय में सृष्टि करने के लिए स्वयंभू ब्रह्मा ने तपस्या की । उन तपस्या करते हुए [ब्रह्मा] के समस्त रोमकूपों से स्वेद को धारायें उत्पन्न हुईं । उस स्वेद के रूप में उत्पन्न जल में अपनी छाया को देखकर (उनका) रेतस् (शुक्र) स्खलित हुआ । उस रेतस् के सहित दो रूपों वाला हुआ । उनमें एक ओर स्थित रेतस् भृज्यमान होता हुआ भृगु नामक महर्षि हुआ । वे ही भृगु अपने उत्पादक (जनक) तिरोभूत ब्रह्मा के दर्शन के लिए "अथर्वाग् इन (ब्रह्मा) का इस जल में ही अन्वेपण करो" इस शरीर विहीन वाणी के द्वारा उक्त होने (सम्बोधित होने) के अनुसार अथर्वा नामधारी हुए । अवशिष्ट रेतस् से जल के द्वारा

---

१ अर्वाङ् ग । २. अवशिष्ट-, ख ३. जै०, ३।१।३६ ।
४. जै०, २।१।३७ । ५. गो० ब्रा०, १।४ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्रह्मणस्तप्तस्य सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो रसोऽक्षरत्। सोऽङ्गरसभूतत्वात् अङ्गिरा नाम महर्षिरभवत्। ततस्तत्कारणं ब्रह्म तम् अथर्वाणम् अङ्गिरसं चाभ्यतपत्।[1] ततः एकर्चद्वृचादिमन्त्रद्रष्टारो विंशतिसंख्याका अथर्वाणोऽङ्गिरसश्चोत्पन्नाः। तेभ्यस्तप्तेभ्य ऋषिभ्यः सकाशात् स्वयंभु ब्रह्म यान् मन्त्रान् अद्राक्षीत् सोऽथर्वाङ्गिरःशब्दवाच्यो वेदोऽभवद्। अत एकर्चादीनाम् ऋषीणां विंशतिसंख्याकत्वाद् वेदोऽपि विंशतिकाण्डात्मकः सम्पन्नः। अत एव सर्वसारत्वाद् अयं वेदः श्रेष्ठः। श्रूयते हि—

"श्रेष्ठो हि[2] वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां[3] हृदये[4] संबभूव" "एतद् वै[5] भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः। येऽङ्गिरसः स रसः। येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्। यद् भेषजं तद् अमृतम्। यद् अमृतं तद् ब्रह्म"। एवं सारभूतब्रह्मात्मकत्वाद् ब्रह्मकर्तव्यप्रतिपादनाच्च अयं ब्रह्मवेद इत्यप्याख्यायते। तथा च श्रुतिः। "चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः" इति। अत एव सारवत्त्वात् सिद्धमन्त्रता समाम्नायते—

घिरे हुए वरुण शब्द से वाच्य (एवं) तपस्या किए हुए ब्रह्मा के समस्त अङ्गों से रस क्षरित (गलित) हुआ। वह अङ्गरस (अङ्गों का रस) होने के कारण अङ्गिरा नाम महर्षि हुआ। तत्पश्चात् उनके कारणभूत ब्रह्म ने उन अथर्वा एवं अङ्गिरा को अभितप्त किया। उनसे एक ऋचा, दो ऋचा आदि मन्त्रों के द्रष्टा बीस की संख्या में अथर्वा एवं अङ्गिरस् ऋषि उत्पन्न हुए। उन तप्त ऋषियों के माध्यम से स्वयम्भू ब्रह्म ने जिन मन्त्रों को देखा वह अथर्वाङ्गिरस नामक वेद हुआ। अतः एकर्चादि ऋषियों के बीस संख्या में होने से उक्त वेद भी बीस काण्ड वाला सम्पन्न हुआ। अतएव सब का सार होने से यह वेद श्रेष्ठ है। क्योंकि श्रुति है—

"तपस्या से समुत्पन्न यह श्रेष्ठ वेद ब्रह्मज्ञ (ऋषियों) के हृदय में सम्भूत हुआ",[6] "यही वह सुमहत्तम ब्रह्म है जो भृगु एवं अङ्गिरस हैं। जो अङ्गिरस हैं वही रस है। जो अथर्वा हैं वही भेषज (औषधि) है। जो भेषज है वह अमृत है। जो अमृत है वही ब्रह्म है।"[7] इस भाँति सारभूत ब्रह्म के स्वरूप वाला होने से तथा (यज्ञ कार्य में) ब्रह्मकार्य का प्रतिपादन करने के कारण यह ब्रह्मवेद भी कहलाता है। श्रुति भी है, "ये चतुःसंख्यक वेद हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं ब्रह्मवेद।"[8] अतः सारवत्त्व के कारण इसकी सिद्धमन्त्रता समाम्नात होती है—

---

१. चाभ्यतत् क, ख। २. ह ग। ३. ज्यानाम् ग।
४. क्षितये ग। ५. एतद्वपि क, ख। ६. गो० ब्रा०, १।९।
७. गो० ब्रा०, ३।४। ८. गो० ब्रा०, २।१६।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्रसम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥

तथा स्कान्दे कमलालयखण्डे आथर्वणमन्त्राणां जपमात्रेणाभिमतफल-साधनत्वमुक्तम्—

यस्तत्राथर्वणान् मन्त्रान् जपेच्छ्रद्धासमन्वितः।
तेषाम् अर्थोद्भवं कृत्स्नं फलं प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥

(३)

अथर्ववेदस्य उपवेदाः

अस्य वेदस्य सर्पवेदादयः पञ्चोपवेदा अङ्गत्वेन समान्तरं ब्रह्मणा सृष्टाः। तथा च ब्राह्मणम्। "स दिशोऽन्वैक्षत प्राचीं दक्षिणां प्रतीचीम् उदीचीं ध्रुवाम् ऊर्ध्वाम्" इति प्रक्रम्य दक्षिणां "पञ्च वेदान् निरमिमीत सर्पवेदम् पिशाचवेदम् असुरवेदम् इतिहासवेदम् पुराणवेदम्" इति। तदेवम् आमुष्मिकफलेषु दर्शपूर्ण-मासादिषु अयनान्तेषु त्रयीविहित कर्मसु अपेक्षितं ब्रह्मत्वम् अनन्यलभ्यत्वाद् अथर्ववेदैकसमधिगम्यम् इति स्थितम्।

"न कोई तिथि है, न नक्षत्र है, न ग्रह है और न चन्द्रमा है। अथर्व मन्त्र के अनुष्ठान से सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जायेंगी।"[1]

तथा स्कान्द (स्कन्दपुराणान्तर्गत) कमलालय खण्ड में आथर्वण मन्त्र के जपमात्र से अभिवाञ्छित फल की प्राप्ति उक्त है—

"जो भी वहाँ श्रद्धा से समान्वित होकर आथर्वण मन्त्रों का जप करे, वह निश्चित ही उनके अर्थ से उत्पन्न सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है।"

(३)

अथर्ववेद के उपवेद

इस वेद के सर्पवेदादि पाँच उपवेद इसके अङ्गरूप में ब्रह्मा के द्वारा समान अन्तर से सृष्ट (विरचित) हुए। जैसा कि ब्राह्मणवचन है—"उन्होंने प्राची (पूर्व), दक्षिण, प्रतीची (पश्चिम), उदीची (उत्तर), ध्रुव एवं ऊर्ध्व दिशाओं को देखा" इस भाँति प्रक्रम (प्रारम्भ) करके दक्षिण दिशा में, "पाँच-पाँच वेदों को निर्मित किया—सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद एव पुराणवेद"[2]। इस प्रकार से परलोक का फल प्रदान करने वाले दर्शपूर्णमासादि वेदत्रयी द्वारा विहित अयनान्त (गवामयन) आदि यज्ञकर्मों में अपेक्षित होना एवं ब्रह्मत्व अन्यत्र अनुपलब्ध होने से मात्र अथर्ववेद के द्वारा ही समधिगम्य है, यह सुनिश्चित हुआ।

Funding by IKS-MoE

१. प० २।५। २. गो० ब्रा०, १।१०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(४)

पुराणादिषु अथर्ववेदप्रशंसा

तद्वदेव ऐहिकफलानि शान्तिकपौष्टिकानि कर्माणि राजकर्माणि अपरिमित-फलानि तुलापुरुषादिमहादानानि च अथर्ववेद एव प्रतिपादितानि। पौरोहित्यं च अथर्वविदैव कार्यम्। तत्कर्तृकाणां कर्मणां राजाभिषेकादीनां तत्रैव विस्तरेण प्रतिपादितत्वात्। यथा च विष्णुपुराणे—

"पौरोहित्यं शान्तिकपौष्टिकादि राज्ञाम् अथर्ववेदेन कारयेद् ब्रह्मत्वं च" इति।

भट्टाचार्यैरप्युक्तम्—

शान्तिपुष्ट्यभिचारार्था एकब्रह्मर्त्विगाश्रयाः।
क्रियन्तेऽथर्ववेदेन त्रय्येवात्मीयगोचराः॥

नीतिशास्त्रेऽपि—

त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात् पुरोहितः।
अथर्वविहितं कर्म कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्॥

---

(४)

पुराण आदि में अथर्ववेद की प्रशंसा

उसी भाँति इहलोक में फलप्रदान करने वाले शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा अपरिमित फल प्रदान करने वाले तुला, पुरुषादि महादान रूप राजकर्म भी अथर्ववेद में ही प्रतिपादित हैं। पौरोहित्य कर्म भी अथर्ववेद के ज्ञाता को ही करना चाहिए, क्योंकि उस (पुरोहित) के द्वारा किये जाने वाले राजाभि-षेकादि कर्मों का वहीं (अथर्ववेद में ही) सविस्तार प्रतिपादन हुआ है। जैसा कि विष्णुपुराण में उक्त है—"राजाओं का शान्तिक, पौष्टिक आदि रूप पौरो-हित्य-कर्म अथर्ववेद के द्वारा ही कराये।"

भट्टाचार्य के द्वारा भी कथित है, "शान्ति, पुष्टि, अभिचारार्थक तथा एकमात्र ब्रह्मा ऋत्विक् पर ही आश्रित कर्म अथर्ववेद के द्वारा किये जाते हैं जिस प्रकार कि आत्मीय गोचर कर्म वेदत्रयी द्वारा।"

नीतिशास्त्र में भी—

"वेदत्रयी एवं दण्डनीति में पुरोहित को कुशल होना चाहिए। उसे अथर्व-वेद द्वारा विहित तान्त्रिक एवं पौष्टिक कर्म करना चाहिए।"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मत्स्यपुराणे—

पुरोहितं तथाथर्वमन्त्रब्राह्मणपारगम् ।

मार्कण्डेयपुराणे—

अभिषिक्ताऽथर्वमन्त्रैर्महीं भुङ्क्ते ससागराम् ।

अथर्वपरिशिष्टे—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः ।
निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥
तस्माद् राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम् ।
दानसम्मानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत् ॥

स्याद् एवम् । यद्यस्य अर्थवत्त्वं स्यात् तदास्य व्याख्यानम् उपपन्नं स्यात् । तदेव कुत इति चेत् । उच्यते ।

"स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इत्यनेन विधिना कृत्स्नस्यापि वेदराशेः अर्थावबोधपर्यन्तं तस्य बोधितत्वात् ।

मत्स्यपुराण में भी—

"उस प्रकार से अथर्व के मन्त्र एवं ब्राह्मण भाग में पारङ्गत पुरोहित को।"

मार्कण्डेय पुराण में—

"अथर्वमन्त्रों के द्वारा अभिषिक्त [सम्राट् समुद्रों सहित पृथ्वीमण्डल का उपभोग करता है।"

अथर्वपरिशिष्ट में—

"जिस राजा के जनपद (राज्य) से शान्तिपारग अथर्वा (अथर्ववेद का ज्ञाता) निवास मात्र करता है उसका वह राष्ट्र सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित वृद्धि को प्राप्त होता है। इस कारण से राजा को विशेषतः जितेन्द्रिय अथर्वा का दान, सम्मान एवं सत्कारों द्वारा प्रतिदिन पूजन करना चाहिए।"[1]

ऐसा ही हो। यदि इस (अथर्ववेद) का अर्थतत्व हो तो इसका व्याख्यान भी उपपन्न (उचित) होगा। तो इसमें वह अर्थतत्व कैसे स्वीकार किया जाय, ऐसा यदि कोई कहे तो बतलाते हैं—

'स्वाध्याय का अध्ययन करना चाहिये",[2] इस विधि निर्देश के द्वारा समस्त वेदराशि का अर्थावगमन पर्यन्त उसके बोधित (ग्राह्य) होने के कारण [उसमें अर्थतत्व है]।

---

१. प० ४।०।

२. तै० ब्रा०, २।१५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(४)

अध्ययनविधिवाक्ये शब्दभावना अर्थभावना च

तथा हि। "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इत्यत्र विध्यविरुद्धा भावना प्रतीयते। सा च द्विविधा। शब्दभावना अर्थभावना चेति। तद् उक्तम् आचार्यैः—"इह हि लिङादियुक्तेषु द्वे भावने प्रतीयेते। शब्दभावना अर्थभावना[1] च" इति। तत्र शब्दभावनाया अर्थभावना भाव्या। लिङादि करणम्। अर्थवादप्रतिपादिता स्तुतिः इतिकर्तव्यता। अर्थभावनायाः स्वर्गादिर्भाव्यः। धात्वर्थः करणम्। प्रयाजादिः इतिकर्तव्यता।

(५)

भावनालक्षणम्

ननु धात्वर्थातिरेकिणीं भावनामेव नोपलभामहे कस्या धात्वर्थः करणं स्यात्? कथं वा तस्या विभागः? भाव्यनिष्ठो[2] भावकव्यापारो भावनेति चेत्? न पचियजिगमिप्रभृतिषु[3] धातुषु अधिश्रयणसंकल्पचलनादयो धात्वर्था एवेति अतिरिक्तस्य[4] भावकव्यापारस्य अभावात्। प्रयत्नो भावकव्यापार इति चेत्? न। वृक्षश्चलति, काष्ठानि पचन्ति, नौर्याति, इत्येवमादिषु अचेतनकर्तृकव्यापारेषु

(४)

अध्ययन विधि में शब्द-भावना एव अर्थ-भावना

यथा स्वाध्याय ("अपनी वैदिक शाखा) का अध्ययन करना चाहिए" यहाँ भावना विधि के अनुकूल प्रतीत होती है। वह दो प्रकार की हैं—शब्दभावना एवं अर्थभावना। आचार्यों के द्वारा कथित है, "यहाँ लिङादि युक्त शब्दों में] दो भावनाएँ प्रतीत होती हैं। शब्दभावना एवं अर्थभावना।" इन दोनों में शब्दभावना की भाव्य अर्थभावना होती है। उसमें लिङादि करण (साधन) हैं। अर्थवाद भाग के द्वारा प्रतिपादित स्तुति ही इतिकर्तव्यता है। अर्थभावना का स्वर्ग आदि (की प्राप्ति) भाव्य है। यहाँ धातु का अर्थ करण (साधन) है। प्रयाज आदि इतिकर्तव्यता है।

(५)

भावना का लक्षण

पूर्वपक्ष :—धातु के अर्थ से भिन्न भावना ही उपलब्ध नहीं होती, [इस स्थिति में धात्वर्थ किस (भावना) का करण बने? अथवा कैसे उस [भावना] का [उससे] विभाग (पार्थक्य) हो?

१. शब्दभावनार्थभावना क, ख। २. भावकव्यापारो क, ख।
३. प्रक्रांतपु क, ख। ४. इत्यतिरिक्तस्य क, ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तदभावात्। स्पन्दः स इति चेत्? न। आत्मकर्तृकव्यापारेषु यजतिददातिजुहोतीत्यादिषु तदभावात्। तर्हि उभयानुगतम् औदासीन्यप्रच्युतिसामान्यमेव भावकव्यापारो भविष्यतीति चेत्? न। अचेतने[1] विभौ[2] शब्दे स्पन्दप्रयत्नयोरभावेन तदुभयसामान्यरूपस्य तस्य अभावात्। सत्यम्, धात्वर्थाद् अत्यन्तातिरेकिणी भावना नास्तीति। धात्वर्थानामेव पाको यागः प्रयत्नः संकल्पः अधिश्रयणम् विक्लेदनम् अभिधानम् चोदनम् इति प्रातिस्विकं धात्वभिधेयम् अक्रियात्मकं सिद्धस्वभावम् एकं रूपम्। सर्वधात्वर्थानुगतं करोतिप्रत्ययवेद्यं क्रियात्मकं साध्यस्वभावम् अन्योत्पादनानुकूलात्मकम् आख्यातप्रत्ययवेद्यम् अपरं रूपम्। तथा हि। यः स्पन्दते यो यजते यश्चरति यो विदधाति ते सर्वे करोतिप्रत्ययमनुभवन्ति। स्पन्दते स्पन्दनं करोति, यजते यागं करोति, इत्येवं सर्वत्र करोत्यर्थस्यानुगतिः। तद् उक्तम् आचार्यैः—

(क) भाव्यनिष्ठ भावक व्यापार भावना है, ऐसा यदि कोई कहे तो? ऐसा नहीं (कहा जा सकता) है क्योंकि पचि, यजि, गमि इत्यादि धातुओं में अधिश्रयण, सङ्कल्प, चलन आदि तो धातु के अर्थ ही हैं, इनसे पृथक् कोई भावक व्यापार तो है नहीं।

(ख) यदि कहें कि प्रयत्न ही भावक व्यापार है? तो ऐसा नहीं हैं, क्योंकि वृक्ष चलता है, काष्ठ पचाते हैं, नौका जाती है इत्यादि अचेतन कर्तृक व्यापारों के अन्तर्गत उस [प्रयत्न] का अभाव होता है।

(ग) वह स्पन्द (चेष्टा) रूप होता हैं, ऐसा कहें तो? यह भी नहीं है। क्योंकि यज्ञ करता है, देता है, हवन करता है इत्यादि में उस (चेष्टा) का अभाव होता है।

तब उभयानुगत औदासीन्यप्रच्युतिसामान्य (सामान्यतः उदासीनता का अभाव) रूप ही भावक-व्यापार होगा, यदि यह कहें तो? ऐसा भी नहीं है क्योंकि अचेतन शब्द में स्पन्द एवं प्रयत्न दोनों के अभाव के कारण वह तदुभय सामान्य रूप नहीं हो सकता।

उत्तरपक्ष :—सत्य ही है। धात्वर्थ से अत्यन्त भिन्न भावना नहीं होती। धात्वर्थों का ही पाक, याग, प्रयत्न, संकल्प, अधिश्रयण, विक्लेदन, अभिधान, चोदन (आदि)—यह प्रातिस्विक (प्रत्येक का अपना), धातुओं द्वारा अभिधेय, अक्रिया रूप एवं सिद्धस्वभाव वाला एक रूप है। समस्त धात्वर्थों में अनुगत 'करोति' प्रत्यय के द्वारा ज्ञेय, क्रिया रूप, सिद्धस्वभाव वाला, अन्य द्वारा उत्पादनानुकूल स्वरूप वाला एवं आख्यात प्रत्यय के द्वारा वेद्य अन्य रूप है। यथा—जो स्पन्दमान होता हैं, जो यज्ञ करता है, जो चलता है, जो विधान

१. अचेतनी क, ख। २. नास्ति घ। ३. भावः क, ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिद्धकर्तृक्रियावाचिन्याख्यातप्रत्यये सति ।
सामानाधिकरण्येन करोत्यर्थोऽवगम्यते ॥

भिन्नेषु त्रिविधधात्वर्थेषु[१] उत्पाद्यवस्त्वन्तरकर्मकम् एतदेवापरं रूपं भवितुः प्रयोजकव्यापारत्वाद् भावनेत्युच्यते। तच्च यजेत दद्यात् जुहुयात् इत्याख्यातप्रयोगेष्वेव अवगमात् पाकः त्यागः रागः इत्यादिषु अनवगमाच्च[२] अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् आख्यातप्रत्ययाभिधेयम् अङ्गीक्रियते। यथाहुः—

[३]अभिधाभावनामाहुरन्यामेव लिङादयः ।
[४]अर्थात्मभावना त्वन्या सर्वाख्यातेषु गम्यते ॥

ये प्रयत्नं वा स्पन्दं वा उभयं वा भावनाम् अङ्गीकुर्वते, तैरपि तेषां सर्वत्रानुगमाभावात् सर्वधात्वर्थानुगतम् अन्योत्पादनानुकूलरूपमेव भावनेत्यङ्गीकर्तव्यम्। एतदप्युक्तम्—

करता है वे सभी 'करता है' रूप प्रत्यय (प्रतीति) का अनुभव करते हैं। स्पन्दमान होता है अर्थात् स्पन्दन करता है, यजमान होता है अर्थात् योग करता है इस प्रकार से सर्वत्र 'करता है' रूप अर्थ अनुगत होता है। ऐसा आचार्यों के द्वारा उक्त है—

"आख्यातप्रत्यय के कर्तृगत सिद्ध क्रियावाची होने पर सामानाधिकरण्य द्वारा 'करता है' ऐसा अर्थ अवगत होता है।"[५]

भिन्न-भिन्न विविध धात्वर्थों के अन्तर्गत उत्पादनीय वस्त्वन्तर रूप कर्मवाला यही दूसरा रूप भविता (कर्ता) के प्रयोजक व्यापार के कारण भावना कहा जाता हैं। साथ ही वह 'यज्ञ करे', 'दान करे', 'हवन करे', इस भाँति आख्यात प्रयोगों के अन्तर्गत ही अवगमनीय (प्रतीत) होने से तथा पाक, त्याग, राग इत्यादिकों में अवगनीय न होने से अन्वय एवं व्यतिरेक के द्वारा व्याख्यात प्रत्यय के द्वारा ही अभिधेय स्वीकृत होता है। जैसा कि उक्त है—

"लिङादि प्रत्यय अन्य ही अभिधाभावना को बतलाते हैं। अर्थरूप भावना तो अन्य ही है जो समस्त आख्यातों में गम्यमान होता है।"[६]

जो प्रयत्न अथवा स्पन्द अथवा दोनों को भावना स्वीकार करते हैं, उनके द्वारा भी उन [प्रयत्नादि] के सर्वत्र अनुगत न होने से सभी धात्वर्थों में अनुगत अन्योत्पादनानुकूल रूप ही भावना होती हैं इसे स्वीकार करना चाहिये। यह भी कहा गया है—

---

१. विविधत्वर्थेयु क ख। २. इत्यादिष्वचगमाच्च क ख। ३. अभिधाभावन क, ख। ४. अर्थात्मा क, ख। ५. मी० भा० वि० २।१।१। ६ मी० भा० वि०, २।१।१।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिद्धसाध्यस्वभावाभ्यां धात्वर्थो द्विविधो मतः।
अन्योत्पादानुकूलात्मा भावना साध्यरूपिणी॥

तस्मात् धात्वर्थातिरेकिणी भावनेति सिद्धम्।

(६)

अध्ययनविधौ साध्यपक्षः

तथा च अध्ययनविधावपि तव्यप्रत्ययावगताया भावनाया अंशत्रयेण भवितव्यम्। तत्र धात्वर्थः करणत्वेन अन्वेति। भाव्यापेक्षायाम् अत्र तस्मादुपात्तत्वात् "स स्वर्गः स्यात् सर्वान् प्रत्ययविशिष्टत्वात्"[१] इति विश्वजिन्न्यायेन स्वर्ग एव भाव्यतया अन्वेतीति पूर्वः पक्षः। ननु कथं स्वर्गस्य भाव्यता? समनन्तरपदोपात्तस्य स्वाध्यायस्यैव भाव्यत्वाद् इति चेत्? न। तस्य अपुरुषार्थत्वेन भाव्यत्वासम्भवात्। तर्हि अर्थज्ञानमेव दृष्टप्रयोजनरूपत्वाद् भाव्यं भवत्विति चेत्? न। विधिमन्तरेणापि पदपदार्थव्युत्पत्तिमताम् अधीतेन स्वाध्यायेन अर्थज्ञानस्य जायमानत्वात्। तर्हि अधीतेनैव स्वाध्यायेन अर्थं जानीयाद् इति अवघातादिवद् नियमार्थो विधिर्भवति चेत्? न। अनारभ्याधीतस्य स्वाध्यायविधेः अक्रत्वर्थत्वेन नियमार्थत्वानुपपत्तेः। अवघातादयोऽपि क्रतावेव नियम्यन्ते अवघातनिष्पन्नैरेव तण्डुलैः पुरोडाशादिनिष्पादनद्वारा दर्शपूर्णमासापूर्वं सम्पादयेदिति, न तण्डुलादिस्वरूपे। प्रमाणान्तरविरोधात्। मा भूत् स्वाध्यायस्य

"सिद्ध एवं साध्य स्वभाव के कारण धात्वर्थ दो प्रकार वाला माना गया है। [उनमें से] अन्य के उत्पत्त्यनुकूल रूप वाली भावना ही साध्य-रूपा होती है।"

इस कारण से धात्वर्थ से अतिरिक्त ही भावना है यह सिद्ध हुआ।

(६)

अध्ययन-विधि का साध्य-पक्ष

पूर्वपक्ष :—अध्ययन-विधि के अन्तर्गत भी ['अध्येतव्यः' के अन्तर्गत] 'तव्य' प्रत्यय के द्वारा अवगत भावना के तीन अंश होने चाहिये। उनमें धात्वर्थ करण रूप में अन्वित होता है। भाव्य (साध्य) की अपेक्षा होने पर वहाँ उसके अनुक्त होने से "वह स्वर्ग ही हो सकता है, क्योंकि वह सबके लिए अविशिष्ट नहीं है"[१]। इस भाँति 'विश्वजिन्न्याय' से स्वर्ग ही भाव्य रूप में यहां अन्वित होता है, यह पूर्वपक्ष है।

---

१. जै०, ४।३।१५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाव्यता। मा च भूद् अर्थज्ञानस्य। तथापि "यद् ऋचोऽधीते पयसः कूल्या अस्य पितॄन् स्वधा[1] अभि वहन्ति। यद् यजूंषि घृतस्य कूल्याः। यत् सामानि सोम एभ्यः पवते। यद् अर्थवाङ्गिरसो मधोः कूल्याः। यद् ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदसः कूल्या अस्य पितॄन् स्वधा अभि वहन्ति" इत्यध्ययनं प्रकृत्य [2]पठितार्थवादोक्तघृतकूल्यादिकमेव भाव्यं भवत्विति चेत्? न। तस्यापि ब्रह्मयज्ञस्वाध्यायमधिकृत्य पठितत्वेन ग्रहणाध्ययनफलसमर्पकत्वानुपपत्तेः। तथापि अतिदेशतः प्राप्तेः अस्यापि फलं भविष्यतीति चेत्? न। अर्थवादस्य अनतिदेश्यत्वात्। तस्माद् विश्वजिन्न्यायेन स्वर्ग एव अध्ययनविधेर्भाव्यः। यथाहुः—

विनापि विधिना दृष्टलाभान्न[3] हि तदर्थता।
कल्प्यस्तु विधिसामर्थ्यात् स्वर्गो विश्वजिदादिवत्॥

अब स्वर्ग कैसे भाव्य (साध्य) बन सकता है? क्योंकि समनन्तर (समीपस्थ) पद के द्वारा उपात्त (उक्त) स्वाध्याय ही भाव्य बन सकता है, यदि ऐसा कहें तो? ऐसा नहीं है। स्वाध्याय पुरुषार्थ न होने से भाव्य भी नहीं बन सकता है।

तब अर्थज्ञान ही दृष्टप्रयोजन रूप होने से भाव्य होना चाहिये ऐसा कहा जाय? यह भी उचित नहीं हैं, क्योंकि विधि [कथन] के अभाव में भी पद और पदार्थ के सम्बन्ध में व्युत्पन्न जन अध्ययन किये गए स्वाध्याय के द्वारा ही अर्थज्ञान कर लेंगे।

तब अध्ययन किये गये स्वाध्याय के द्वारा ही अर्थ को जाने यह अवघातादिवत् नियमार्थक विधि हो सकती है, ऐसा कहा जाय तो? यह भी उचित नहीं है। क्योंकि बिना प्रारम्भ किये अधीत स्वाध्याय की विधि का अक्रत्वर्थत्व रूप में नियमार्थत्व होना अनुपपन्न है।

अवघात (कूटना) आदि भी क्रतु (यज्ञकर्म) में ही नियमित होते हैं। अवघात के द्वारा निष्पन्न तण्डुलों के द्वारा ही पुरोडाशादि निष्पादन के माध्यम से दर्शपूर्णमास (याग को करने से उत्पन्न होने वाले) अपूर्व का सम्पादन करे, न कि तण्डुलादि स्वरूप में ही, क्योंकि ऐसा मानने पर अन्य प्रमाणों के साथ (उसका) विरोध हो जायेगा। मानते हैं, स्वाधाय की भाव्यता और साथ ही अर्थज्ञान की [भाव्यता] भी नहीं है। फिर भी—

"जो ऋचा के द्वारा अध्ययन करता है, उसके पितरों की स्वधाओं को जल (या दुग्ध) की कूल्यायें (नहरें) वहन करती हैं, जो यजुर्मन्त्रों के द्वारा करता है उसके पितरों की स्वधाओं को घृत की कूल्यायें वहन करती हैं, जो साममन्त्रों

Funding by IKS-MoE

---

१. स्वधया–क ख। २. र्थवेदो–क र्थिवेदो–ख। ३. भान्निहि क ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तरपक्षः

अत्रोच्यते, अर्थावबोधार्थमेव अध्ययनं विधीयते। ननु पदपदार्थव्युत्पत्तिमतां पुंसां विधिम् अन्तरेणापि अर्थावबोधो जायत इति विध्यानर्थक्यम् इत्युक्तम् इति चेत्, न अध्ययनसंस्कृतेनैव स्वाध्यायेन अर्थं जानीयात् न पुस्तकादिपठितेनेति नियमार्थत्वाद् विधेः अक्रत्वर्थेषु नियमानुपपत्तिरिति उक्तम् इति चेत्, न "प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत" इत्येवमादिषु अक्रत्वर्थेष्वपि नियमदर्शनात्। "व्रीहीन् प्रोक्षति" इत्यादिविधिवत् संस्कारविधानमात्रपर्यवसायित्वाद् अयं विधिर्न स्वाध्यायस्य अर्थज्ञानार्थतां बोधयतीति चेत्, न "चरुम् उपदधाति" इति

द्वारा करता है तो उन [पितरों] के लिये सोमरस पवमान (प्रवाहित) होता है, जो अथर्वाङ्गिरस मन्त्रों द्वारा करता है उसके पितरों के लिये मधु को कूल्याएँ एवं जो ब्राह्मण, इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसों के द्वारा करता है, उसके पितरों के लिये मेदस की कूल्याएँ स्वधा का अभिवहन करती हैं।"[२]

यहाँ अध्ययन के प्रक्रम में पठित अर्थवाद के द्वारा उक्त घृत कूल्यादि ही भाव्य हो सकते हैं, ऐसा यदि कहें तो? यह भी अनुचित है। क्योंकि उसका भी ब्रह्मयज्ञ के स्वाध्याय को अधिकृत करके पठित रूप में ग्रहण होने से अध्ययन फल का समर्पकत्व अनुपपन्न है। फिर भी अतिदेश के द्वारा प्राप्त होने से यह इसका भी फल हो सकता है, ऐसा कहें तो? ऐसा भी नही है। अर्थवाद का अतिदेश नहीं होता। इस कारण विश्वजिन्न्याय से स्वर्ग ही अध्ययन विधि का भाव्य है। जैसा कि कथित है—

"विधि के अभाव में भी दृष्ट का लाभ होने से यह उस [विधि] का अर्थ (भाव्य) नहीं है, बल्कि विश्वजिदादिन्याय से विधिसामर्थ्यवशात् स्वर्ग ही [इस भाव्य रूप में] कल्पित होने योग्य है।

उत्तरपक्ष :—यहाँ बतलाते हैं। अर्थावबोध रूप अर्थ (भाव्य) वाला ही अध्ययन विधीयमान होता है। [ऊपर] जो कहा गया कि पद और पदार्थ के विषय में व्युत्पत्तिमान (व्युत्पन्न) जनों को विधि के अभाव में भी अर्थावबोध हो जाता है, अतः विधि निरर्थक है, ऐसा मानें तो? ऐसा उचित नहीं है। क्योंकि अध्ययन के द्वारा संस्कृत स्वाध्याय के द्वारा ही अर्थ जाना जा सकता है, न कि केवल पुस्तकादि पढ़ने के द्वारा ही। इस कारण से विधि नियमार्थक है। [ऊपर] जो यह कहा गया कि अक्रत्वर्थ (याग से भिन्न कार्य में नियम अनुपपन्न है, ऐसा यदि कहें तो? यह भी उचित नहीं माना जा सकता हैं

---

१. स्वस्वा-क ख। २. तै० आ २।१०।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चरोरुपधानविधिः संस्कारं[1] विदधद् यथा तत्संस्कृतस्य चरोः[2]स्थलनिष्पत्तिशेषतां विधत्ते, तद्वद् अध्ययनविधिरपि[3] स्वाध्यायस्य अध्ययनसंस्कारं विदधत् तत्संस्कृतस्य तस्य अर्थावबोधार्थत्वं विधत्ते। संस्कारविधेः संस्कारविनियोग-पर्यन्तत्वेऽपि[4] फलत्वाविशेषात् स्वर्गार्थतां कुतो न विधत्त इति चेत्, न अर्थावबोधस्य दृष्टप्रयोजनस्य संभवे अदृष्टार्थत्वकल्पनाया अन्याय्यत्वात्। तद् उक्तम्—

लभ्यमाने फले दृष्टे नादृष्टफलकल्पना।
विधेस्तु नियमार्थत्वान्नानर्थक्यं भविष्यति॥

(७)

अध्ययनविधौ प्राभाकरमतं तस्य खण्डनञ्च

प्राभाकरास्तु—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

इति स्मृत्यनुमितेन "उपनीयाध्यापनेनाचार्यकं संपादयेद्" इत्यनेन विधिना लब्धानुष्ठानस्य "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इत्यस्याध्ययनविधेः अधिकारपरत्व-जिज्ञासायां प्रथमप्रतीतेन आचार्यकाधिकारकत्वम् आशङ्क्य अन्तरङ्गत्वाद् अर्थज्ञानाधिकारपरत्वमेव वर्णयन्ति॥

क्योंकि पूर्वमुख होकर भोजन करे" इत्यादि अक्रत्वर्थों में भी नियम दृष्टिगोचर होते हैं। "व्रीहियों का प्रोक्षण करता है" इत्यादि की ही भाँति संस्कारविधान मात्र में पर्यवसित होने के कारण यह विधि स्वाध्याय की अर्थज्ञानार्थता (अर्थ-ज्ञानरूप फल) को नहीं बोधित करती है, ऐसा यदि मानें तो ? यह भी नहीं है, "चरु का उपधान करता है।"[5] यहाँ चरु की उपधान विधि सस्कार का विधान करती हुई जिस भाँति उसके द्वारा संस्कृत चरु की स्थलनिष्पत्ति शेषता का [भी] विधान कर देती है उसी भाँति अध्ययनविधि भी स्वाध्याय के अध्ययन संस्कार का विधान करती हुई उसके द्वारा संस्कृत उस (अध्ययन) के अर्थाव-बोधार्थत्व का भी विधान करती हैं। संस्कारविधि की संस्कारविनियोगपर्यन्तता होने पर भी फलत्व के अविशेष होने (एक ही प्रकार का फल होने) के कारण क्यों नहीं यह स्वगर्थिता (स्वर्ग रूप फलत्व) का विधान करती है ऐसा यदि कहें तो ? यह भी ठीक नहीं है क्योंकि अर्थावबोध रूप दृष्टप्रयोजन के सम्भव रहने पर [स्वर्गादि रूप] अदृष्टार्थत्व की कल्पना अनुचित है। जैसा कि कहा गया है—

"दृष्ट फल के लभ्यमान रहने पर अदृष्टफल की कल्पना नहीं होती है। विधि के नियमार्थक (नियमपरक) होने से उसमें अनर्थकता नहीं हो सकती।"

---

१. संस्कार विधिर्यथा—क ख। २. चरोस्थिल—क ख। ३. विधेरपि—क ख।
४. पर्यन्तत्वति—क ख। ५. तै० सं०, ५।३।२।५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तद् अयुक्तम् । आचार्यकरणविधेरेव अभावात् । ननूक्तम् । "उपनीय तु यः शिष्यम्" इत्यनया स्मृत्या उपनीयाध्यापनेन आचार्यकं भावयेद्, इत्येवंरूप आचार्यकरणविधिरनुमीयते इति । तन्न । एवं रूपायाः श्रुतेः अनेवंरूपया स्मृत्या अनुमातुम् अशक्यत्वात् । तथा हि इयं स्मृतिः उपनीयाध्यापयिता आचार्य इति ब्रवीति न पुनरध्यापनं विदधाति । तद्विधाने योऽध्यापयिता 'तम् आचार्यं प्रचक्षते इत्यंशेन एकवाक्यताविरोधात् । ननु 'उपनीयाध्यापयेद्' इति अध्यापनं विधाय विधिसिद्धमर्थं 'यस्तु' इति अनूद्य तस्याचार्यत्वं प्रतिपादयतीति चेत्, न स्वारस्येन विध्यप्रतीतौ तदाश्रयणेन वाक्यभेदकल्पनायां प्रमाणाभावात् । तद् उक्तम्—

संभवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदश्च नेष्यते ।

(८)

अध्ययनविधि के विचार के अन्तर्गत प्रभाकर के मत का उपन्यास और खण्डन

प्रभाकरमतानुयायी तो—

"जो द्विज शिष्य का उपनयन करके उसे कल्प एवं रहस्य के सहित वेद का अध्यापन करे, उसे आचार्य कहते है ।"[१]

इस स्मृति के द्वारा अनुमान के माध्यम से "उपनयन करके अध्यापन द्वारा आचार्यत्व का सम्पादन करे" यह विधि प्राप्त होती है और इस विधि के द्वारा लब्ध "स्वाध्याय का अध्ययन करना चाहिये यह अध्ययन के अनुष्ठान की विधि प्राप्त होती है । इसके अधिकारपरत्व की जिज्ञासा होने पर प्रथम प्रतीत आचार्य के अधिकार की आशङ्का करके अन्तरङ्ग होने के कारण अर्थज्ञान के अधिकार-परत्व का ही वर्णन करते हैं ।

वह अनुचित है क्योंकि आचार्यकरणविधि का ही अभाव है । "उपनयन करके जो शिष्य को···" इस स्मृति के द्वारा 'उपनयन एवं अध्यापन द्वारा आचार्यक (आचार्यत्व) का भावन करे' इस रूप में आचार्यकरण विधि का अनुशासन करना चाहिए यह जो कहा, वह [यथार्थ] नहीं है क्योंकि इस रूप वाली श्रुति की भिन्न रूप वाली स्मृति के द्वारा अनुमान नहीं हो सकता । यथा यह स्मृति—

"उपनयन करके अध्यापन करने वाला आचार्य होता है ।"

Funding by IKS-MoE

१. म० स्मृ०, २।१४० ।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किञ्च। 'योऽध्यापयेत्' इति यच्छब्दयोगोऽपि विधिशक्तिम् अपहन्ति। तर्हि "यदाग्नेयोऽष्टाकपालः" इत्यादावपि यच्छब्दयोगात् विधिशक्तिरपहन्येतेति चेत सत्यम्। तत्रापि यच्छब्दवृत्तस्य विधित्वभङ्गेन "यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्यै" इत्यर्थवादेन "यत् स्तूयते तद् विधीयते" इति न्यायेन परिकल्पितस्य अन्यस्यैव विधित्वस्वीकारात। तस्माद् "उपनीय तु यः शिष्यम्" इत्यादिस्मृत्यनुमिता श्रुतिः नाचार्यकरणविधौ प्रमाणम्।

ननु "अष्टवर्षं ब्राह्मणम्[1] उपनयीत, तमध्यापयीत" इत्यत्र नयतेः "संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः" इति आचार्यकरणे आत्मनेपदविधानाद् उपनयने आचार्यकरणविधिरपेक्षित एव इति चेत्[2] ? तद् अयुक्तम्।

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
[3]याजनाध्यापने चैव विशिष्टाच्च प्रतिग्रहः॥

वह कहती है, न कि अध्यापन का विधान करती है। क्योंकि ऐसा विधान होने पर "जो अध्यापन करता है उसे आचार्य कहते हैं" इस अंश के साथ एकवाक्यता होने की स्थिति में विरोध होने लगेगा। उपनयन करके अध्यापन करे इस भाँति अध्यापन का विधान करके एवं (इस) विधि द्वारा सिद्ध "जो कोई भी ..." इस अर्थ का अनुवाद करके उसके उसके आचार्यत्व का प्रतिपादन करता है, ऐसा कहें तो ? ऐसा नहीं है क्योंकि स्वारस्य के द्वारा (उक्त) विधि की अप्रतीति में उसके आश्रयण से वाक्यभेद की कल्पना में प्रमाण का अभाव है। कहा गया है—

"एकवाक्यता के सम्भव होने पर वाक्यभेद अभीमत नहीं होता।"

यही नहीं, "जो अध्यापन करता है" यहाँ 'जो' शब्द का संयोग भी विधिशक्ति का अपघात कर देने वाला है। तब "जो आग्नेय अष्टाकपाल....."[4] इत्यादि में भी 'जो' शब्द के योग के कारण विधिशक्ति समाप्त हो जाती है, ऐसा कहें तो ? सत्य ही है किन्तु वहाँ भी 'जो' शब्द के (कारण) विधित्व का भङ्ग होने से ही "जो यह आग्नेय अष्टाकपाल आमावास्या एवं पूर्णमासी में सुवर्ग (स्वर्ग) लोक की अभिजिति के लिए अच्युत (अस्खलित) होता है"[5] इस अर्थवाद के द्वारा "जिसकी स्तुति की जाती है, उसका विधान किया जाता है" इस न्याय से परिकल्पित अन्य का हो विधित्व स्वीकार किया जा रहा है। अतः "जो शिष्य का उपनयन करके ..." इत्यादि स्मृति के द्वारा अनुमित श्रुति आचार्य करणविधि में प्रमाण नहीं है।

१. उपनीयत—क ख। २. चेत्यन्तम्—क ख। ३. यजनाध्यापने—क ख।
४. तै० सं०, २।६।३।३। ५. तै० सं०, २।६।३।३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इति द्रव्यार्जनाद्यर्थंतयैव प्राप्तस्य अध्यापनस्य विध्यनर्हत्वात्। ननु तथापि अलौकिकाचार्यकसाधनत्वेन अप्राप्तस्याध्यापनस्य विध्यनर्हतेति चेत्, न आचार्यकस्य[1] लोकप्रसिद्धत्वाद् अलौकिकत्वानुपपत्तेः।

स्याद् एतत्। "उपनयीत" इत्यात्मनेपदात् सनियमकोपनयनशेषित्वप्रतीतेः आचार्यकम् अलौकिकमिति, न। आचार्यकरणे वर्तमानस्य[2] नयतेः अकर्त्रभिप्राये आत्मनेपदविधानाद् उपनयनाचार्यकयोः[3] परस्परम् अङ्गाङ्गिभावानुपपत्तेः। अन्यथा "स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले" इति ञित्त्वादेव आत्मनेपदे सिद्धे सम्माननादिसूत्रम् अनर्थकं स्यात्।

ननु क्रियाफलस्य कर्त्रभिप्रायत्वं नाम न कर्त्रभिलषितत्वं किंतु कर्तृगतत्वमेव। अतः उपनयनक्रियाफलस्य माणवकनिष्ठत्वेन अकर्त्रभिप्रायत्वाद् आचार्यकरणे एव नयतेः आत्मनेपदं सिध्यतीति चेत्, एवं सति "वसन्ता ब्राह्मणोऽग्निमादधीत" इत्याधानफलस्य अग्निसंस्कारस्य अग्निगतत्वेन अकर्त्रभिप्रायत्वाद् "स्वरितञितः" इत्यात्मनेपदं न स्यात्। न च उपनयनक्रियाफलस्य संस्कारस्य माणवकाभिलषितत्वाद् अकर्त्रभिप्रायत्वम् इति। आचार्यस्यापि अभिलषितम्। आचार्यानभिलषितत्वे तस्य क्रियाफलत्वानुपपत्तेः। न हि क्रियाजन्यं

"आठ वर्ष [की आयु में] ब्राह्मण का उपनयन करे एवं उसका अध्यापन करे यहाँ" 'नो' धातु का संमानन, उत्सञ्जन, आचार्यकरण, ज्ञान, भृति, विगणन एवं अव्ययों के अर्थ में नी धातु से आत्मनेपद होता है"[4] इस सूत्र के अनुसार आचार्यकरण [अभिप्राय] में आत्मनेपद विधान होने से उपनयन में आचार्यकरणविधि अपेक्षित हैं ऐसा कहें तो ? वह अयोग्य है क्योंकि

"इस [ब्राह्मण] के छः कर्मों में से तीन कर्म आजीविका रूप हैं—यज्ञ कराना, अध्यापन करना एवं विशिष्ट जनों से प्रतिग्रह (दान लेना)।"[5]

यहाँ द्रव्याजंनादि के (प्रयोजनरूप) होने से प्राप्त अध्यापन विधि नहीं हो सकती। फिर भी अलौकिक आचार्यकसाधन के रूप में [होने से] अप्राप्त अध्यापन विधि नहीं हो सकती है ऐसा यदि कहें तो ? ऐसा नहीं है क्योंकि आचार्यत्व के लोकप्रसिद्ध होने से उसमें अलौकिकता अनुपपन्न है। ठीक है, ऐसा ही हो।

किन्तु [यदि कहें कि] "उपनयन करना चाहिए" यहाँ आत्मनेपद के [प्रयोग के] कारण सनियमक उपनयनशेषित्व की प्रतीति होने से आचार्यत्व अलौकिक है, तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि आचार्यकरण [के अर्थ] में विद्यमान 'नी' धातु का अकर्त्रभिप्राय में (कर्तृभिन्न अभिप्राय में) आत्मनेपद

१. करवस्य—क ख। २. नं०—क ख। ३. कत्वयोः—क ख।
४. पा० अष्टा०, १।३।३६। ५. म० स्मृ० १०।७६।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यस्य कस्यचिद् अभिलषितं वा क्रियाफलं, किं तु कर्त्रभिलषितं सत् क्रियाजन्यं क्रियाफलम्। अन्यथा श्रमादिकमपि क्रियाजन्यम्, अहितस्य यस्य कस्यचिद् अभिलषितं चेति 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादौ क्रियाफलस्य अकर्त्रभिप्रायत्वेन आत्मनेपदं न स्यात्। न च अस्मत्पक्ष[1] इव माणवकसमीहितसाधनत्वेनैव उपनेतुः उपनयनक्रियाफलम् अभिलषितम् इति भवतां मतम्, येन क्रियाफलम् अकर्त्रभिप्रायं स्यात्। आचार्यककामस्य अतत्साधने माणवकाधिकारे समीहानुपपत्तेः। उपपत्तौ वा माणवकाधिकारस्यैव अभिलषितस्य प्रयोजकत्वाद् आचार्यकाधिकारस्य प्रयोजकत्वं न स्यात्। तस्माद् आत्मनेपदादेव क्रियाफलस्य अकर्त्रभिप्रायत्वाव-गतेर्माणवकसमीहितसाधनत्वेनैव उपनयनस्य प्रतीतिः।

विधान होने से उपनयन एवं आचार्यत्व का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव अनुपपन्न हो जाता है। अन्यथा [कर्त्रभिप्राय में मानने पर] "स्वरितवान् ञित् धातु के साथ क्रियाफल के कर्त्रभिप्राय में होने पर आत्मनेपद होता है"[2] इस सूत्र से ञित् होने के कारण ही आत्मनेपदविधान सिद्ध हो जाने [उपरिनिर्दिष्ट] "सम्मान-नोत्सञ्जन ..." सूत्र ही व्यर्थ हो जायेगा।

क्रियाफल के कर्त्रभिप्रायत्व का आशय कर्त्रभिलषितत्व (कर्ता द्वारा अभिलाषि होना) नहीं है बल्कि कर्तृगतत्व मात्र है। अतः उपनयन क्रिया के [उपनयन संस्कार रूप] फल के माणवकनिष्ठ होने से अकर्त्रभिप्रायक होने के कारण आचार्यकरण ही 'नी' धातु का आत्मनेपद सिद्ध कर देता है, ऐसा कहे तब ? ऐसा होने पर "वसन्त में ब्राह्मण अग्नि का आधान करे"[3] यहाँ अग्निसंस्कार-रूप आधानफल के अग्निनिष्ठ होने से अकर्त्रभिप्राय के कारण "स्वरितवान् एवं ञित्" इस सूत्र द्वारा आत्मनेपद ही नहीं हो सकेगा। साथ ही संस्कार रूप उपनयन क्रिया के फल का माणवक के द्वारा ही अभिलषित होने के कारण अकर्त्रभिप्रायत्व नहीं है। यह (संस्कार) आचार्य का भी अभिलषित है। क्योंकि आचार्य का अभिलषित न होने पर उसका क्रियाफलत्व ही अनुपपन्न हो जाता है अथवा ऐसा नहीं है, कि क्रियाजन्य जिस किसी का भी अभिलषित क्रियाफल होता है, किन्तु कर्ता के द्वारा अभिलषित होता हुआ ही क्रियाजन्य श्रमादिक भी जिस किसी शत्रु के (अहित चाहने वाले) के अभिलषित [होने से क्रियाफल हो सकते हैं], और इस भाँति 'स्वर्ग की कामना वाला यजन करे' इत्यादि में [उक्त] क्रियाफल के अकर्त्रभिप्रायत्व के कारण आत्मनेपद नहीं हो सकेगा। साथ ही न तो हमारे पक्ष की भाँति माणवक के समीहित साधनत्व के द्वारा ही उपनेता का उपनयन क्रियाफल अभिलषित है' यह आप सबका पक्ष है, जिसके कारण क्रिया अकर्त्रभिप्राय वाली हो जाती है। क्योंकि आचार्यत्व की कामना

Funding by IKS-MoE

---

१. 'त्पद इव'—क ख। २ पा० अष्टा०, १।३।७२। ३. तै० ब्रा० १।१।२।६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न च "उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्" इति क्त्वाप्रत्ययेन आचार्यकशेषत्वम् उपनयनस्येति मन्तव्यम् । स्मृतिगतो हि क्त्वाप्रत्ययः "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इत्यनुशासनाद् उपनयनाध्यापनयोः समानकर्तृकत्वमेव आचष्टे । तच्च[1] एककर्तृकप्रयोज्यत्वम् । तच्च अङ्गाङ्गिभावेनैव उपपद्यत इति उपनयनस्य अध्यापनाङ्गत्वप्रतीतिर्विलम्बेन भवति । "वसन्ते ब्राह्मणम् उपनयीत" इति द्वितीयाश्रुतिः प्रत्यक्षश्रुतिगता । तया द्वितीयाश्रुत्या झटिति[2] उपनयनस्य उपनेयशेषत्वं प्रतीयते । "श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे श्रुतिरेव बलीयसी" इत्युपनयनस्य उपनेयशेषत्वमेव अङ्गीकर्तव्यम् ।

ननु उपनयनम् उपनेयशेषोऽस्तु । तथापि उपनेयस्य आचार्यकशेषत्वात् तद्द्वारा उपनयनस्यापि तदङ्गत्वम् इति चेत्, न उपनेयसंस्कारस्य आचार्यकशेषत्वे उपनेयशेषत्वं च सप्रयोजनत्वाविशेषेऽपि पुरुषान्तरगतत्वेन आचार्यकस्य बहिरङ्गत्वात् एकपुरुषनिष्ठत्वेन अध्ययनस्यान्तरङ्गत्वात् "अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गं बलीयः" इति तस्य अध्ययनाङ्गत्वमेव अङ्गीकर्तव्यम् । यदि समानकर्तृकेति[3] विहितस्मार्तक्त्वाप्रत्ययबलादेव अन्तरङ्गत्वं बाध्येत तर्हि भवत्पक्षे अध्यापनविधिप्रयुक्तस्य अध्ययनविधेः किमधिकारपरत्वम् इति जिज्ञासायाम्

रखने वाले की अतत्साधनीभूत माणवकाधिकार में समीहा (अभिलाषा) ही उत्पन्न नहीं हो सकती, अथवा उत्पन्न होने पर भी अभिलषित माणवकाधिकार का ही प्रयोजकत्व होने से आचार्यकाधिकार का [उसमें] प्रयोजकत्व न होगा। इस कारण से आत्मनेपद के द्वारा ही क्रियाफल के अकर्त्रभिप्रायत्व का अवगमन होने से माणवक के समीहित साधनत्व के रूप में ही उपनयन की प्रतीति होती है।

और न ही "उपनयन करके जो शिष्य को वेद अध्यापित करे" यहाँ क्त्वा प्रत्यय के द्वारा उपनयन का आचार्यकशेषत्व है ऐसा मानना चाहिए क्योंकि स्मृतिगत क्त्वा प्रत्यय "समानकर्तृत्व [क्रियाओं] में से पूर्वकालवर्ती में....."[4] इस अनुशासन के द्वारा उपनयन और अध्ययन का समानकर्तृत्व ही कहता है (सूचित करता है) एवं वह अङ्गाङ्गिभाव के द्वारा ही उपपन्न होता है फलतः उपनयन के अध्यापनाङ्गत्व की विलम्ब से प्रतीति होती। "वसन्त में ब्राह्मण का उपनयन करना चाहिए"[5] यह दूसरी श्रुति प्रत्यक्ष श्रुति विषयक है। इस दूसरी श्रुति के द्वारा शीघ्र ही उपनयन का उपनेयशेषत्व प्रतीत होता है। "श्रुति और स्मृति का विरोध होने पर श्रुति ही बलवती होती है" इस [नियम] के अनुसार उपनेयशेषत्व ही स्वीकार करना चाहिये।

१. तच्चैवकर्तृ–क ख। २. झडित्यप–क ख। ३. ति नास्ति–क ख।
४. पा० अष्टा०, ३।४।२१। ५. आप० ध०, १।१।१।१९।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"अधीत्य स्नायाद्" इति स्मार्तक्त्वाप्रत्ययानुरोधेन अन्तरङ्गत्वयुक्तेर्बाधात् अन्तरङ्गार्थज्ञानपरत्वं परित्यज्य आचार्याधिकारत्वमेव स्यात्। तस्माद् अकर्त्रभिप्रायविहितात्मनेपदबलाद् अन्तरङ्गयुक्तेश्च उपनयनम् अध्ययनाङ्गम् इत्याचार्यकस्य[1] सनियमकोपनयनशेषित्वाभावाद् नास्य अलौकिकत्वसिद्धिः। तदसिद्धौ च अन्यतः प्राप्तस्य अध्यापनस्य आचार्यकशेषत्येन विध्यसिद्धिः।

कथं तर्हि "अध्यापयीत" इति विधिः ? "एतयान्नाद्यकामं याजयेत्" इतिवत् प्रयोजकव्यापारान्तर्गतोऽपि[2] विधिः प्रयोज्यव्यापारपरः इति ब्रूमः। ननु तत्र

ठीक है, उपनयन का उपनेयशेषत्व मान लेते हैं। फिर भी उपनेय के आचार्यकशेषत्व होने के कारण उसके द्वारा उपनयन को भी उस (आचार्यक-शेषत्व) का अङ्ग हो जाता है, ऐसा यदि कहें तो ? यह ठीक नहीं है।

उपनेय संस्कार के आचार्यकशेषत्व होने पर एवं उपनेयशेषत्व के अविशेषतः प्रयोजन से युक्त होने पर भी अन्य पुरुष में स्थित होने से आचार्यत्व के बहिरङ्ग होने के कारण [एवं] एकपुरुष में होने से अध्ययन के अन्तरङ्ग होने के कारण "अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग [कार्यों] में अन्तरङ्ग ही बलवत्तर होता है" इस नियमानुसार उसका अध्ययनाङ्गत्व ही स्वीकरणीय है।

यदि 'समानकर्तृक०' इस नियम के द्वारा विहित स्मृतिवाक्यगत स्मृतिगत 'क्त्वा' प्रत्यय के सामर्थ्य से ही अन्तरङ्गत्व बाधित हो जाय तब आपके पक्ष में अध्यापनविधि के प्रति उक्त अध्ययनविधि का अधिकारपरत्व क्या है ऐसी जिज्ञासा होने पर "अध्ययन करके स्नान करे" इस भाँति स्मार्त 'क्त्वा' प्रत्यय के अनुरोध से अन्तरङ्गत्व युक्ति के बाधित होने पर अङ्गार्थज्ञानपरत्व का परित्याग करके आचार्याधिकारत्व ही हो जायेगा। इस कारण अकर्त्रभिप्राय में विहित आत्मनेपद के सामर्थ्य से एवं अन्तरङ्ग युक्ति के द्वारा भी उपनयन का अध्ययनाङ्गत्व [होता है] इस प्रकार (आचार्यत्व) का सनियमक उपनयनशेषत्वाभाववश होने से इस आचार्यत्व के अलौकिकत्व की सिद्धि नहीं हो पाती है। एवं उसकी असिद्धि में अन्यत्र से प्राप्त अध्यापन का आचार्यकविशेषत्व रूप में विधि की भी असिद्धि हो जाती है।

ऐसा होने पर 'अध्यापित करे" यहाँ कैसे विधि है, [यदि यह कहें] "इसके द्वारा अन्नादि की कामना करने वाले को यजन कराये" इस प्रकार से प्रयोजन व्यापार के अन्तर्गत [होती हुई] भी विधि प्रयोज्यव्यापारपरक ही है ऐसा कहते हैं। वहाँ तो कामश्रुति (कामना विषयक श्रुति) के सामर्थ्य से कामना वाले पुरुष की ही विधि अपेक्षित होने से प्रयोज्यव्यापारपरत्व हो सकता है।

---

१. कत्वस्य-क ख। २. रांगतो-क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कामश्रुतिबलात् कामिन एव विध्यपेक्षायां प्रयोज्यव्यापारपरत्वम् अस्तु । अत्र तु तदभावात् तत्परत्वं नेति चेत् ? न । "निषादस्थपतिं याजयेत्" इत्यत्र कामश्रुतेरभावेऽपि द्रव्यार्जनार्थत्वेन अन्यतः प्राप्तं याजनं परित्यज्य [1]प्रयोज्यव्यापारस्यैव अप्राप्तस्य विधेयत्वस्वीकारात् । एतेन

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेद् एनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥

इत्येतदपि नाध्यापनविधिपरम् इत्यवगन्तव्यम् ।

उपनीय ददद् वेदम् आचार्यः स उदाहृतः ।

इत्येतदपि क्रियायोगमेव आचार्यशब्दाभिधेयम् इति व्युक्तमुपदर्शयति । तस्माद् अध्यापनस्य विधिरेव नास्तीति सिद्धम् । तदभावेन स्वविधिप्रयुक्तैव [2]अध्ययनस्य । स च अध्ययनसंस्कृतेनैव स्वाध्यायेन अर्थं जानीयाद् इति विधत्त इति कृत्स्नस्यापि वेदराशेर्विवक्षितार्थत्वेन स्वतः प्रामाण्यात् तदन्तर्गतस्य व्याख्यानं कर्तुं युक्तमेवेति सिद्धम् ।

यहाँ तो उस (कामना) का अभाव होने से तत्परत्व (प्रयोज्यव्यापारपरत्व) नहीं हो सकता । ऐसा यदि कहें तो ? यह उचित नहीं है क्योंकि "निषाद स्थपति को यज्ञ कराये" यहाँ कामश्रुति का अभाव होने पर भी द्रव्यार्जनार्थत्व के द्वारा अन्यत्र से प्राप्त याजन का परित्याग करके अप्राप्त प्रयोज्यव्यापार का ही विधेयत्व स्वीकार कर लिया जाता है । इसके द्वारा, "गुरु शिष्य का महाहृतिपूर्वक उपनयन करके इसे वेद अध्यापित करे एवं शौच तथा आचार की भी शिक्षा प्रदान करे ।"[3]

यह भी अध्यापनविधिपरक नहीं है, यह जानना चाहिए ।

"उपनयन करके वेद (वेदज्ञान) प्रदान करता हुआ वह आचार्य उदाहृत (परिभाषित किया गया है ।"[4]

यह [स्मृति] भी "क्रियायोग के माध्यम से ही आचार्य शब्द का अभिधेय है" यह स्पष्टतः उपदर्शन कराता है (अर्थात् परिलक्षित कराता है) ।

इस कारण से अध्यापन की विधि ही नहीं है यह सिद्ध हुआ । [फलतः] इसके अभाव में अध्ययन की स्वविधिप्रयुक्तता ही [अवधार्य] है । तथा वह (विधि) अध्ययन के द्वारा संस्कृत स्वाध्याय द्वारा ही अर्थ को जाने, यह विधान करता है । इस प्रकार समस्त वेदराशि के विवक्षितार्थत्व होने के कारण स्वतः प्रामाण्य द्वारा (अथर्ववेद) का व्याख्यान करना युक्त है यह सिद्ध हुआ ।

---

१. प्रयोजनव्या–क ख । २. अध्यायनस्य–क ख ।
३. या० स्मृ०, १।१५ । ४. या० स्मृ०, १।३४ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(९)

वेदस्य स्वतः प्रामाण्यमिति-सिद्धान्त विषये विविधा विप्रतिपत्तयः

वेदस्य स्वतः प्रामाण्यं चोदनासूत्रे आचार्यैरेव उपपादितम्। तत्र बहुधा विवदन्ते वादिनः। प्रामाण्यम् अप्रामाण्यं च उभयं स्वत इति सांख्याः[१]। उभयं परत इति तार्किकाः। प्रामाण्यं स्वतः अप्रामाण्यं परत इति मीमांसकाः। अप्रामाण्यं[२] स्वतः प्रामाण्यं परतः इति सौगताः॥

सांख्यमतम्

प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वं नाम कार्यकारणादेव कार्येण सह उत्पत्तिः। अत्र सांख्या एवं प्रतिपादयन्ति। स्वतः असताम् असाध्यत्वाद् उभयं स्वत इति। तत्र[३] प्रमाणं च यद् असत् तन्न क्रियते, यथा शशविषाणम्[४]। कारकव्यापारात् पूर्वं

(९)

वेद के स्वतः प्रामाण्यविषयक विप्रतिपत्तियाँ

वेद का स्वतः प्रामाण्य चोदनासूत्र में आचार्यों के द्वारा ही प्रतिपादित है।[५] उस सम्बन्ध में वादी (विविध मतानुयायी विद्वान्) अनेक प्रकार से विवाद करते हैं।[६]

(क) 'प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य दोनों ही स्वतः (स्वतः सिद्ध) हाते हैं' यह यह साङ्ख्यों का मत हे।

(ख) 'दोनों ही परतः (परतः सिद्ध) होते हैं यह तार्किकों' (नैयायिकों) का मत है।

(ग) प्रामाण्य स्वतः (सिद्ध) एवं अप्रामाण्य परतः (सिद्ध) होता है, यह मीमांसकों का मत है।

---

१. सांख्यः—क ख। २. नहीं है—क ख। ३. नं प्रमाणं च—क ख। ४. तथा—क ख।

५. जैसा कि श्लोकवार्तिक में पूज्य भट्टकुमारिलपाद के द्वारा भी प्रतिपादित है—"समस्त प्रमाणों का प्रामाण्य स्वतः ही होता है, यह जानना चाहिए, क्योंकि स्वतः असती (अविद्यमान) शक्ति किसी के द्वारा भी (या उद्भूत) करने में शक्य स ध्य) न ीं है।" (श्लो० वा०, १।२।४७)

६ प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य सिद्धान्त के विषय में सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार ने जैमिनि-दर्शन के निरूपण के प्रसङ्ग के अन्तर्गत आचार्यों के अनेकप्रकारक मतों का संक्षेप इस भाँति से प्रदर्शित किया है—साङ्ख्यवादी प्रमाणत्व और अप्रमाणत्व [दोनों के] स्वतः होने पर आश्रित हैं, नैयायिकों ने इन्हें इन दोनों को परतः एवं सौगतों ने अन्तिम (अप्राणत्व) को स्वतः [अर्थात्] प्रामाण्य प्रथम को परतः बतलाया है एवं अन्त में] वेदवादियों (मीमांसकों) ने प्रमाणत्व को स्वतः तथा अप्रमाणत्व को परतः बतलाया है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कार्यम् असच्चेत् तर्हि न क्रियते च । अतः सदेव पूर्वमपि । अपि च कार्यं कारणेन प्राक् सम्बद्धम् असम्बद्धं वा । सम्बद्धं चेद् असतः [1]सम्बन्धानुपपत्तेः प्रागपि सदेव कार्यम् । असम्बद्धं चेत्, इदमेवास्य कारणम् इदमेवास्य कार्यम् इति नियमो न स्यात् असत्ताऽसम्बन्ध[2]योरविशेषात् । यथाहुः—

असत्त्वान्नास्ति सम्बन्धः[3] कारणैः[4] सत्त्वसङ्गिभिः ।
असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः ॥

किं च कारणाद् अभिन्नत्वात् कार्यस्य प्रागसत्त्वं नोपपद्यते । तथा हि तन्तुभ्यः पटो न भिद्यते तत्कार्यत्वात् । यद् यतो भिद्यते न तत् तस्य कार्यम्, यथा गौरश्वस्य । तन्तुकार्यं पटः । तस्मात् तन्तोर्न भिद्यते । यद् यतो भिद्यते तस्य तेन सह संयोगः अप्राप्तिर्वा [5]स्यात्, यथा कुण्डवदरयोर्मेरुविन्ध्ययोर्वा । न हि पटस्य तन्तुभिः सह तद् उभयम् अस्ति । तस्माद् न तन्तुभ्यो भिद्यते पट इत्यभेदसिद्धेः कार्यं प्रागपि सदेव इति सिद्धम् ॥

(घ) अप्रामाण्य स्वतः एवं प्रामाण्य परतः (सिद्ध) होता है । यह सौगतों का मत है ।

(क) **साङ्ख्यमत :**—प्रामाण्य के स्वतस्त्व (स्वतः सिद्ध होने) का अभिप्राय कार्य के कारण से ही कार्य के साथ उत्पत्ति है । यहाँ साङ्ख्यमतानुयायी इस भाँति प्रतिपादित करते हैं । स्वतः (अपने आप में) असत् (मिथ्या तत्व) के असाध्य (सिद्ध होने के अयोग्य) होने से दोनों ही (प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य) स्वतः होते हैं । उनमें जो प्रमाण असत् होता है वह [सिद्ध] नहीं किया जाता है, यथा—खरगोश की सींग ।

यदि कारक व्यापार (कारण व्यापार) के पूर्व में कार्य असत् होता तब वह (कार्य) [प्रतिपादित] नहीं [होना चाहिए] और होता भी नहीं है [अथवा वह पूर्वतः असत् कार्य उत्पन्न ही नहीं हो सकता] । अतः [कार्य] पहले भी सत् (विद्यमान रहता है) पुनश्च, कार्य कारण के साथ [उत्पत्ति] के पूर्व सम्बद्ध रहता है अथवा असम्बद्ध । यदि सम्बद्ध रहता है तब असत् के साथ सम्बन्ध अनुपपन्न होने से [उत्पत्ति के] पूर्व भी कार्य सत् ही रहता है । यदि असम्बद्ध रहता है ? तब यही इसका कारण है [अथवा] यही इसका कार्य है ऐसा नियम ही नहीं रह जायेगा क्योंकि असत्ता एवं असम्बन्ध परस्पर अविशेष हैं (दोनों का एक ही तात्पर्य है) । जैसा कि [विद्वज्जन] कहते हैं ।

"सत्त्वसङ्गी कारकों के साथ [कार्यों के पूर्वतः] असत् होने से इसका सम्बन्ध नहीं रह जाता है । तथा असम्बद्ध के उत्पत्ति की अपेक्षा करने वाले के लिए कोई व्यवस्था नहीं रह जाती है[6] ।"

---

१. सम्बद्धा—क ख । २. तासम्बद्धा—क ख । ३. बद्ध—क ख ।
४. कारकैः—क ख । ५. सिक—क ख । ६. स सं १४,७० ।

Funding by IKS-MoE

CC0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सांख्यमतसमीक्षा

अत्र ब्रूमः। न च क्रियमाणत्वं सत्त्वसाधनम्। असत्त्वेऽपि तस्योपपत्तेर्हेतोर्विपक्षाद् व्यावृत्तेः सन्दिग्धत्वात्। तथा हि, न हि सतो घटादेः क्रियमाणत्वं द्रष्टम्, कृतकरणव्यापारानुपपत्तेः। नाप्यसतः क्रियमाणत्वम् अनुपपन्नम् इति। प्रागसतोऽपि घटादेः समाग्र्यां सत्याम उत्पत्तिदर्शनात्। यदप्युक्तम् कारणेन असम्बद्धस्य कार्यस्योत्पत्तौ इदमेवास्य कार्यम् इदमेवास्य कारणम् इति नियमानुपपत्तिरिति तदप्यपेशलम्; किंचिदेव कारणं कस्मिंश्चिदेव कार्ये शक्तम् इति शक्तितो नियमेन सिद्धेः। न च शक्यव्यतिरेकेण शक्तिरेव नास्तीति वक्तव्यम्। अयम् अग्निः अद्विष्ठातीन्द्रियाश्रयः कारणत्वाद् गुरुत्वाश्रयवदिति तत्सिद्धेः। नापि शक्तिरपि [2]शक्येन असम्बद्धा न कार्यकारणभावस्य नियामिकेति वाच्यम्। शक्ताश्रयायाः शक्तेश्च प्रतिनियतशक्यार्[3]नुकूलस्वभावत्वात्। अन्यथा [4]सत्कार्यवादपक्षेऽपि प्रधानोपादानत्वे[5]स्वीकारात् सर्वस्य जगतः सर्वं सर्वस्वरूपेण सर्वत्र सर्वदा सदिति विवेकहेतोरभावात् इदमेवास्य कार्यम् इदमेवास्य कारणम्

पुनश्च, कारण से अभिन्न होने के कारण कार्य की पूर्वतः असत्ता उपपन्न नहीं होती, यथा— तन्तु से पट भिन्न नहीं है क्योंकि यह उसी का कार्य है। जो जिससे भिन्न होता है वह उसका कार्य नहीं होता। यथा—गौ अश्व का। तन्तु का कार्य पट है। इस कारण यह तन्तु से भिन्न नहीं हे। [साथ ही] जो जिससे भिन्न होता है उसका उसके साथ या तो संयोग होता हैं अथवा [संयोग की] अप्राप्ति होती है। यथा—कुण्ड एवं बदरीफल (बेर) में [संयोग होता है अथवा मेरु एवं विन्ध्य में [संयोग की अप्राप्ति होती है]। पट का तन्तु के साथ [उक्त] दोनों ही [स्थितियाँ] नहीं हैं। इस कारण से तन्तु से पट भिन्न नहींहोता है इस भाँति अभेद की सिद्धि होने से कार्य [उत्पत्ति के] पूर्व भी सत्‌ही होता है यह सिद्ध हुआ।

२. **साङ्ख्यमत की समीक्षा** :—यहाँ कहते हैं। क्रियमाणत्व ही सत्त्व का साधन नहीं है। क्योंकि उसके उपपत्ति के हेतु ही असत्ता में भी विपक्ष से व्यावृत्ति सन्दिग्ध होती है। यथा—पूर्वतः सत् घटादि का क्रियमाणत्व नहीं देखा जाता है क्योंकि किए गए (अर्थात् विद्यमान वस्तु) के लिए किया जाने वाला करण व्यापार अनुपपन्न है। असत् का क्रियमाणत्व अनुपपन्न नहीं होता। क्योंकि पहले से असत् घटादि की सामग्री के होने पर ही उत्पत्ति देखी जाती है। तथा जो यह कहा गया कि कारण के साथ असम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति होने की स्थिति में यही इसका कार्य है। अथवा यही इसका कारण है यह नियम अनुपपन्न हो जायेगा। वह भी अविचारित है क्योंकि कोई एक ही कारण किसी

१. नयन सिद्धेः—क ख। २. शक्यम्‌ सम्—क ख। ३. शत्मा—क ख। ४. सकार्य—क ख। ५. त्वास्वी—क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इति नियमो न स्यात्। ननु सर्वत्र सर्वदा कार्यस्य सत्त्वाविशेषेऽपि तत्तदभिव्यञ्जकसामर्थ्यनियमात् तत्तदभिव्यक्तिनियमो भविष्यतीति चेत्, एवं तर्हि अस्मत्पक्षेऽपि तत्तदुत्पादककारणसामर्थ्यनियमात् तत्तदसत्कार्योत्पत्तिनियमसिद्धिः।

यत् पुनः कार्यस्य कारणाद् अभेदसाधकम् अनुमानम्, तदपि तन्तुपटयोः प्रत्यक्षेण भेदोपलम्भात् प्रत्यक्षविरुद्धकालात्ययापदिष्टम्। अपि च[1] कारकव्यापारात् प्रागपि कारणे कार्यं सत् स्यात्, तर्हि कारणे कार्यम् उपलभ्येत। न चोपलभ्यते। तस्माद् असदेव। प्रागपि सदेव कार्यम् अभिव्यक्त्यभावाद् नोपलभ्यत इति चेत्, न। किम् इयम् अभिव्यक्तिः प्रागपि सती उत असती। सती चेत्, प्रागपि केवलतन्तुष्वपि तथा पटस्योपलब्धिः स्यात्। असती चेद्, असत्या एव तस्याः पश्चादुत्पत्तिस्वीकारात् तद्वत् सर्वस्याप्यसतः कार्यस्योपपत्तिः किं नाङ्गीक्रियते।

एक कार्य में शक्त होता है इस भाँति शक्ति के द्वारा नियम की सिद्धि हो जाती है। तथा यह भी नहीं कहा जा सकता है कि शक्य से पृथक् कोई शक्ति नहीं होती क्योंकि यह अग्नि अद्विष्ठ (दो से असम्बद्ध) अतन्द्रिय का आश्रय है, क्योंकि इसमें [सम्बन्धित] कारणत्व है, यथा—गुरुत्व का आश्रय, इसके द्वारा उस (शक्य से पृथक् शक्ति) की सिद्धि हो जाती है।

साथ ही शक्ति भी शक्य मे असम्बद्ध होती हुई कार्यकारणभाव की नियामिका नहीं हो सकती, यह भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि शक्ताश्रय (शक्त वस्तु पर आश्रित) शक्ति किसो सुनिश्चित शक्त के अनुकूल स्वभाव वाली होती है, अन्यथा आप के। सत्कार्य सिद्धान्त के पक्ष में भी प्रधान (प्रकृति) का उपादानत्व (कारणता) स्वीकार कर लेने से सम्पूर्ण जगत् का सब कुछ सभी रूपों में, सभी स्थानों में एवं सभी कालों में सत् ही हो जाता है, इस भाँति विवेक (पार्थक्य) के कारण का अभाव हो जाने से यही इसका कार्य है [अथवा] यही इसका कारण है ऐसा नियम नहीं रह जायेगा। सभी स्थानों में एवं सभी कालों में कार्य की सत्ता के अविशेष (सामान्य) रूप में होने पर भी भिन्न-भिन्न अभिव्यञ्जकों के सामर्थ्य-नियम से अभिव्यक्ति के भी भिन्न-भिन्न नियम होंगे, ऐसा यदि कहें तो ? ऐसा होने पर तो हमारे पक्ष में भी भिन्न-भिन्न उत्पादक कारणों के सामर्थ्य नियम से असत्कार्यों के भिन्न-भिन्न उत्पत्तिनियमों की सिद्धि हो जाती है।

पुनः जो कार्य का कारण से अभेद का साधकीभूत अनुमान है, वह भी तन्तु और पट में प्रत्यक्षतः भेद की उपलब्धि होने से प्रत्यक्ष के विरुद्ध कालात्यय (काल व्यवधान) के द्वारा ही अपदिष्ट है। पुनश्च, कारक व्यापार के पूर्व भी कारण में यदि कार्य सत् है, तो कारण में [उस] कार्य उपलब्ध होना चाहिए

Funding by IKS-MoE

१. कारणव्या—क ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रियेत इत्यलमतिप्रसङ्गेन। तस्मात् सत्कार्यनिषेधात् प्रामाण्याप्रामाण्ययोरुभयोरपि स्वतस्त्वे किंचिदेव प्रमाणं प्रमाणमिति व्यवस्थानुपपत्तेश्च नोभयं स्वतः।

सौगतमतम्

अपि तु अप्रामाण्यं स्वतः, प्रामाण्यं परत इति अपरे मन्यन्ते। तथा हि, यदि प्रामाण्यं स्वतोऽवसीयेत, तर्हि एकतरकोटिनिर्धारणात् इदं प्रमाणम् अप्रमाणं वेति न संदह्येत[1]। अन्यथा सर्वत्र संदेहस्योपरमो न स्यात्। अतः कारणगुणज्ञानाद् अर्थक्रियासंवादाद् वा प्रामाण्यनिश्चयः।

ननु आदावेव अर्थतथात्वानिश्चये उत्तरकालीना प्रवृत्तिः कथं जाघटीति तदुत्तरकालीनस्तन्निश्चयो वा कथम्, तदभावे कथं प्रामाण्यनिश्चयः इति चेत्, न। कृष्यादाविव अर्थसंदेहादपि प्रवृत्त्युपपत्तेः। प्रवृत्तस्य च अर्थक्रियोपलब्धौ पूर्वावगतस्य अर्थक्रियाकारित्वं सत्यं निश्चीयते इति तद्विषयस्य पूर्वज्ञानस्यापि तदर्थसम्बन्धित्वेन पश्चात् प्रामाण्यं निश्चीयते। यथोक्तम्—

तस्मिन् सदपि मानत्वं[2] विनिश्चेतुं न शक्यते।
उत्तरार्थक्रियाज्ञानात् केवलं तत् प्रतीयते॥

किन्तु उपलब्ध नहीं होता है। इस कारण [प्रमाणाभाव से] असत् ही है। पूर्वतः सत् होता हुआ भी कार्य अभिव्यक्ति के अभाव से उपलब्ध नहीं होता, ऐसा यदि कोई कहे तो ? ऐसा नहीं है। क्या यह अभिव्यक्ति पूर्व में भी सत् थी अथवा असत् थी ? यदि सत् थी तो पहले भी केवल तन्तुओं में उसके द्वारा पट की उपलब्धि होनी चाहिए। यदि असत् थी तब क्यों नहीं जिस भाँति उस असत् अभिव्यक्ति की बाद में उत्पत्ति स्वीकार की जा रही है उसी भाँति [उसके स्थान पर] सभी असत् कार्यो की **उपपत्ति** (उत्पत्ति ?) स्वीकार कर ली जाति इस [उपपत्ति] को [अगत्या] स्वीकार करना ही पड़ता है। अतः प्रसङ्ग का अतिविस्तार व्यर्थ है। इस कारण से सत्कार्य का निषेध हो जाने के कारण तथा प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य दोनों के स्वतः होने में कुछ ही प्रमाण हैं ऐसी व्यवस्था की उपपत्ति के कारण दोनों ही (प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य) स्वतः (सिद्ध) नही हो सकते हैं।

(ख) सौगतमत का उपन्यास—'अप्रामाण्य स्वतः एवं प्रामाण्य परतः (सिद्ध) होता है, यह अन्य वादी (सौगत) मानते हैं। स्पष्टता के लिए, यदि प्रमाण स्वतः अवसित (निश्चित) हो जाय, तब एकतर कोटि के निर्धारण से यह प्रमाण है अथवा अप्रमाण ऐसा सन्देह नहीं रह जाता है। नहीं तो सन्देह का सर्वत्र उपराम नहीं हो सकता। अतः कारणगुण के ज्ञान से अथवा अर्थक्रिया के संवाद (अनुरूपता) से प्रामाण्य का निश्चय करते हैं।

Funding by IKS-MoE

१. चेति न सदिग्धे—क ख। २. मान्यत्वम्—क ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नैवम् अर्थक्रियाज्ञानस्यापि स्वविषयार्थक्रियापरिनिश्चये परापेक्षा येन अनवस्था भवेत्। तस्य फलरूपत्वात्। फलार्थं वा सर्वं करिष्यते। न फलम् अन्यार्थमिति। अतः स्फुटाविकल्परूपत्वाच्च अर्थक्रियाज्ञानं स्वत एव [1]स्वविषय-तथात्वावधारकं प्रमाणं च। न चैवं प्रामाण्यावगमस्य प्रवृत्त्यङ्गत्वात् प्रवृत्युत्तर-कालम्, [2]अर्थक्रियानिर्णयो निष्फल इति वाच्यम्। ज्ञानान्तरेषु निःशङ्कप्रवृत्त्यर्थं विसंवादिज्ञानव्यावृत्तप्रमाणप्रतिबन्धरूपविशेषाकलनाय[3] प्रवृत्त्युत्तरकालमपि निर्णयस्योपयोगात्। [4]प्रवृत्तावभ्यासवत्याम् आद्यज्ञाने फलस्याप्रतीतावपि अर्थक्रियारूपं फलमिति विषयीकुर्वतो विज्ञानान्तराद् विसंवादिभ्यो व्यावृत्तं वैलक्षण्यं प्रतीयते। यथोक्तम्—

प्रारम्भ में ही अर्थतथात्व (अर्थक्रियात्व) के अनिश्चय में उत्तरकालीन प्रवृत्ति कैसे उत्पन्न हो सकती है, अथवा उसका पश्चात्कालीन निश्चय किस प्रकार से हो सकता है [एवं] उस (निश्चय) के अभाव में प्रामाण्य निश्चय किस प्रकार से हो सकता है, ऐसा यदि कोई कहे तो ? ऐसा नहीं है क्योंकि कृषि कार्यादि की ही भाँति अर्थसन्देह होने पर भी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है (जिस प्रकार फलप्राप्ति सन्दिग्ध होने पर भी कृषक कृषिकर्मादि में व्याप्त होते हैं उसी भाँति सर्वत्र फल का सन्देह होने पर भी मनुष्य की प्रवृत्ति उस कार्य में देखी जाती है) एवं प्रवृत्त व्यक्ति के द्वारा अर्थक्रियोपलब्धी (फलप्राप्ति) होने पर प्रारम्भ में अवगत [प्रमाण] का अर्थक्रियाकारित्व सत्य (निश्चित) हो जाता है। इस तरह पूर्व ज्ञान रूप उसके [प्रामाण्य] के विषय के भी उस अर्थ के साथ सम्बन्धित होने से पश्चात् में प्रामाण्य का निश्चय हो जाता है। जैसा कि कहा गया है—

"उसमें विद्यमान होता हुआ भी मानत्व (प्रमाणत्व) निश्चय करने में शक्य नहीं होता, उत्तर-वर्तिनी अर्थक्रिया के ज्ञान से केवल वह प्रतीत होता है।"

ऐसा नहीं है कि अर्थक्रिया ज्ञान को भी अपने विषयभूत अर्थक्रिया के परि-निश्चयन के लिए पर (अन्य) की अपेक्षा होती है, जिससे कि अनवस्था दोष आ जाता क्योंकि वह तो फलरूप है। अथवा सब कुछ फलप्राप्ति के लिए ही किया जाता है। फल कोई अन्य अर्तरूप नहीं होता। अतः स्पष्टतः अविकल्प रूप के कारण भी अर्थक्रिया का ज्ञान स्वतः ही अपने विषयभूत [अर्थक्रिया] का अवधारक एवं प्रमाण है। और प्रामाण्यावगमन प्रवृत्त्यङ्ग होने के कारण प्रवृत्ति के उत्तरकाल में होता है, [अतः] अर्थक्रियानिर्णय निष्फल है ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि ज्ञानान्तरों मे शङ्कारहित प्रवृत्ति के लिए विसंवादि

१. स्वविषयं—क ख। २. क्रियार्थ निर्णयो—क ख। ३. 'ल' नहीं है—क ख।
४. प्रवृत्त्यावभ्यासवृत्त्यां—क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वृत्तावभ्यासवत्यां तु वैलक्षण्यं प्रतीयते ।
अतद्विषयविज्ञानाद् आद्येऽप्राप्तेऽपि[1] तत्फले ॥

तस्मात् झटिति[2] निःशङ्कप्रवृत्तिरपि तत्र विसंवादिव्यावृत्तप्रमाणप्रतिबन्धनरूपविशेषलिङ्गकाद् अनुमानादेवेति न स्वतः प्रामाण्यावगमः ।

सौगतमतनिरासः

अत्राभिधीयते । वृत्तेः[3] प्रामाण्यम् अर्थयाथार्थ्यनिश्चयाद् भवतु । तन्निश्चयस्तु गुणज्ञानात् संवादाद् वा इति यद् उक्तं तन्न मृष्यामहे । प्रमितिसाधकतमत्वं हि प्रामाण्यम् । प्रमितिश्च अनधिगततथाभूतार्थावधारणम् । नन्वेवम् इन्द्रियादेरेव प्रामाण्यम्, न ज्ञानस्य । तस्यावधारणरूपत्वेन अवधारणन्तरसाधकतमत्वानुपपत्तेरिति चेत्, न । द्विविधं हि अवधारणम् ज्ञानरूपं प्राकटचरूपं चेति । अत्र अनधिगत[4] तथा भूतार्थगोचरत्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यम् । तथा च अनधिगततथाभूतार्थावधारणं प्रमितिः । तत्साधनं ज्ञानं प्रमाणम् । तद्भावः प्रामाण्यमिति नाशब्दार्थत्वम् । अतः प्रमितिलक्षणवाक्यगतावधारणशब्देन

(अननुरूप) इसके द्वारा व्यावृत्त (निराकृत) प्रमाण के प्रतिबन्ध रूप विशेष के आकलन (विचार) के लिए प्रवृत्ति के उत्तरकाल में भी निर्णय का उपयोग होता है । अभ्यासवती (अभ्यासजन्य) प्रवृत्ति होने में प्रारम्भिक ज्ञान के फल की अप्रतीति होने पर भी फल अर्थक्रिया रूप है इस रूप में विषय बनाने पर विज्ञानान्तर से विसंवादि (ज्ञानों) से व्यावृत्त वेलक्षण्य प्रतीत होता है । जैसा कि उक्त है—

"तद्विषयक विज्ञान के न होने से आदि में अप्राप्त फल में भी अभ्यासवती वृत्ति (प्रवृत्ति) होने पर वैलक्षण्य प्रतीत होता है ।"

इस कारण से शीघ्र ही शङ्कारहित प्रवृत्ति भी वहाँ विसंवादी ज्ञान के द्वारा व्यावृत्त प्रमाण के प्रतिबन्ध रूप विशेष लिङ्ग वाला होने से अनुमान के कारण ही होती है । अतः स्वतः प्रामाण्य का अवगमन नहीं होता ।

(२) सौगतमत का निरास :—यहाँ अभिहित करते हैं । वृत्ति (प्रवृत्ति) का प्रामाण्य अर्थ के यथार्थ-निश्चय के द्वारा ही होना चाहिए । वह निश्चय तो गुण (कारणगुण) के ज्ञान अथवा संवाद (अर्थक्रियासंवाद) के कारण होता है, यह जो कहा, इसे हम सहन नहीं करते । क्योंकि प्रमितिसाधकतमत्व ही प्रामाण्य होता है और प्रमिति इस प्रकार के अज्ञात अर्थ का अवधारण होना

१. 'प्राप्तेति' क ख ।
२. 'झडिति' क ख ।
३. 'वित्तेः' क ख ।
४. 'अधि' ख ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ज्ञानप्राकट्ययोः कार्यकारणभावेन अदूरविप्रकृष्टयोरेकरूपप्रामाण्यव्युत्पत्त्यर्थं तन्त्रेणोपादानम्। शक्ती च प्रमाणाप्रमाणगोचरे[1] प्रामाण्याप्रामाण्ये। ते च तथाभूतोऽयम् अर्थः इत्येवं रूपात् तथात्वावधारणाद् अतथाभूतोऽयमर्थं इत्येवं-रूपाद् अतथात्वावधारणाच्च चकास्तः। तत्र तथाभूतार्थावधारणम् अर्थक्रिया-ज्ञानादिलक्षणपरानपेक्षत्वेन ज्ञानस्वरूपमात्राधीनम्। तदवसेयं प्रामाण्यं स्वतोऽवसीयत इत्युच्यते। अतथाभूतावधारणं तु ज्ञानस्वरूपमात्राधीनत्वेऽपि[2] कारण[3]दोषा-वगमादिलक्षणपरापेक्षम् इति तदवसेयम् अप्रामाण्यं[4] परतोऽवसीयत इत्युच्यते। न च अतथाभूतावधारणमपि ज्ञानस्वभावाधीनम्। भ्रमबाधयोरसंभवप्रसङ्गात्। न हि शुक्तौ रजतम् अतथाभूतमिति गोचरयतो ज्ञानस्य भ्रमत्वं बाधसम्भवो वा। तस्मात् ज्ञानस्वभावाधीनमपि अतथाभूतत्वं कारणदोषावगमाद् बाधक-प्रत्ययाद् वा परत एव निश्चीयते इति अप्रामाण्यं परत एवेति सिद्धम्।

ही है। ऐसा होने पर इन्द्रियादि का ही प्रामाण्य हो जायेगा, न कि ज्ञान का क्योंकि वह (इन्द्रियादि) अवधारण रूप है, अन्य अवधारण का साधकतमत्व अनुपपन्न है, ऐसा कहें तो? ऐसा नहीं है। अवधारण के दो रूप हैं---ज्ञानरूप एवं प्राकट्य रूप। उनमें उस प्रकार के अनधिगत (अज्ञात) अर्थगोचरत्व (अर्थाविषयत्व) के द्वारा ज्ञान का प्रामाण्य होता है एवं उस प्रकार के अनधि-गत अर्थ का अवधारण प्रमिति हैं। उसका साधनभूत इस प्रमाण है। इसका भाव 'प्रामाण्य' है इस प्रकार इसमें अशब्दार्थत्व भी नहीं हैं। अतः प्रमिति रूप वाक्य गत अवधारण शब्द का निकट एवं दूर ज्ञान एवं स्थित प्राकट्य के कार्य कारण भाव से एक रूप प्रामाण्य को व्युत्पत्ति के लिए तन्त्र उपादान करता है। शक्तियाँ प्रमाण विषयक एवं अप्रमाण विषयक प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य रूप हैं तथा ये दोनों यह तथाभूत (वास्तविक) अर्थ हैं इस रूप से तथात्व के अवधारण द्वारा तथा यह अतथाभूत (अवास्तविक) अर्थ हैं। इस रूप से अतथात्व के अवधारण अर्थक्रिया ज्ञानादि रूप अन्यों की अपेक्षा न करते हुए मात्र ज्ञानस्वरूप के अधीन है। इसके द्वारा अवसेय (निश्चेय) प्रामाण्य स्वतः ही अवसित होता है, यह कहते हैं। अतथाभूत [अर्थ] का अवधारण तो ज्ञान—मात्र के अधीन होते हुए भी कारणदोष परिज्ञानादि अन्य बातों की अपेक्षा करता है, इस कारण इनके द्वारा अवसेय होने से अप्रामाण्य परतः अवसित होता है, यह कहते हैं। एवं अतथाभूत [अर्थ] का अवधारण भी ज्ञान के स्वभाव के अधीन नहीं है। अन्यथा भ्रम और बाध असम्भव हो जायेगा। 'शुक्ति में रजत अतथाभूत है'

---

१. 'प्रमाणात्प्रमाणागो' क ख। २. 'त्रामधी' क ख।
३. 'करण' क ख। ४. 'प्रामा' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तार्किकमतम्

अपरे पुनः एतदप्यसहमाना अप्रामाण्यवत् प्रामाण्यमपि कारणगतगुणज्ञानात् संवादाद् वा परत एव ज्ञायत इति वर्णयन्ति साधयन्ति च। तथा हि, प्रामाण्यं परतो ज्ञायते। अनभ्यासदशायां सांशयिकत्वात् अप्रामाण्यवदिति। नैतत् साधनम्। अस्मन्मतेऽपि तथाभूतोऽयम् अर्थ इत्येवंरूपावधारणात् परत एव प्रामाण्यं निश्चीयत इति सिद्धसाधनत्वात्। ननु ज्ञप्तावनपेक्षत्वेऽपि उत्पत्तौ परापेक्षास्ति। तथा हि, यदि ज्ञानहेतुमात्राधीनं प्रामाण्यं भवेत् तर्हि प्रमाण-परिज्ञानम् अप्रमाण भवेत् प्रामाण्ये कारणाभावात्। तथा च सति ज्ञानमेव न स्याद् घटादिवत्। ननु दोषाभावस्य प्रामाण्यकारणत्वात् सति च दोषे तदभावाद्[1] नातिप्रसङ्ग इति चेत् तर्हि दोषाभावम् अधिकम् आसाद्य प्रामाण्यमपि जायत इति कथं ज्ञानहेतुमात्रजन्यत्वं तस्य। ननु दोषाभावस्य प्रामाण्यहेतुत्वेऽपि गुणस्य प्रामाण्यं प्रति अहेतुत्वात् तदभावेन वेदानां स्वतःप्रामाण्यं सिध्यतीति चेत् तर्हि गुणस्य प्रामाण्यहेतुत्वेन दोषाभावस्य तदहेतुत्वात् तद्भावेऽपि गुणाभावाद् अप्रामाण्यमपि वेदानां प्रसज्येत। न हि गुणदोषयोः प्रामाण्याप्रामाण्ये प्रति अन्वयव्यतिरेकयोर्विशेषम् उपलभामहे। तस्माद् उभयमपि पर इति सिद्धम्।

इसे विषय बनाते हुए ज्ञान का भ्रमत्व अथवा बाधसम्भव नहीं हो सकता। इस कारण ज्ञान-स्वभाव के अधीन होता हुआ भी अतथाभूतत्व कारणदोष के ज्ञान अथवा बाधक के प्रत्यय (परिज्ञान) द्वारा परतः ही निश्चित होता है इस प्रकार अप्रामाण्य परतः है, यह सिद्ध हुआ।

(ग) ६. तार्किकमत का प्रतिपादन :—अन्य आचार्य इस (सौगत-मत) को भी अस्वीकार करते हुए 'अप्रामाण्य की ही भाँति प्रामाण्य भी कारणगुण के ज्ञान से अथवा संवाद से परतः ही ज्ञात होता है' ऐसा वर्णन करते हैं और इसका साधन भी करते हैं। स्पष्टता के लिए, प्रामाण्य परतः ज्ञात होता है क्योंकि अभ्यास रहित दशा में अप्रामाण्य की ही भाँति यह भी सांशयिक (संशय बिषयक) रहता है। किन्तु यह साधन नहीं है। हमारे मत में भी 'यह अर्थ तथाभूत (वास्तविक) है' इस रूप में अवधारण के कारण परतः ही प्रामाण्य निश्चित होता है इस प्रकार से यहाँ सिद्ध साधनत्व है। यदि कहें कि ज्ञप्ति के अन्तर्गत अपेक्षा न रहने पर भी उत्पत्ति में पर की अपेक्षा होती है, तो यदि प्रामान्य ज्ञानहेतु मात्र के अधीन हो जाय, तब प्रमाण का परिज्ञात अप्रामाण्य हो जायेगा क्योंकि तब प्रामाण्य में कोई कारण नहीं रह जायेगा और

---

१. 'तद्भावाभावात्' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तार्किकमतनिरासः सिद्धान्तनिर्णयश्च

अत्राभिधीयते, कार्यशक्तेः असति बाधके कार्यकारणादेव कार्येण सह उत्पत्तिरङ्गीकर्तव्या। अन्यथा वह्निगताया दाहकत्वशक्तेरपि कारणान्तरादेव उत्पत्तिः स्यात्। तथा च उत्पत्तिलक्षणे तस्य दाहकत्वं न स्यात्। वह्निश्च स्वाश्रयं दहन्नेव जायते। तत् सिद्धम् एतत् स्वत एव च प्रामाण्यमिति। न च अप्रामाण्यमपि स्वत एवास्त्विति मन्तव्यम्। तस्य दोषान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेन ज्ञानहेतुमात्रजन्यत्वाभावात्। स्याद् एतत्। यदि ज्ञानहेतुमात्राधीनं प्रामाण्यं भवेत्, तर्हि स्मृतेरपि प्रामाण्यं स्यात्। तद्, न। प्रामाण्यशब्देन तथाभूतार्थावधारकशक्तेरेव विवक्षितत्वात् तस्या एव च ज्ञानहेतुमात्रशब्दाधीनत्वसमर्थनात्। अन्यथा नैयायिकमतेऽपि अप्रामाण्यस्य दोषाधीनत्वात् तदभावे स्मृतावपि प्रामाण्यसम्भवप्रसङ्गात्।

ऐसा होने पर घटादि की भाँति ज्ञान भी नहीं रह जायेगा। यदि कहें कि दोषाभाव के प्रामाण्य का कारण होने से तथा दोष होने पर उस (प्रामाण्य) का अभाव होने से अतिप्रतङ्ग नहीं है, तब अधिक (अतिरिक्त) दोषाभाव को भी प्राप्त करके जब प्रामाण्य उत्पन्न होता है तब कैसे उसका ज्ञानहेतुमात्र-जन्यत्व स्वीकार हो सकता है। यदि कहें जि दोषाभाव के प्रामाण्य के प्रति हेतु होने से तथा गुण के उसके प्रति हेतु न होने से उस (गुण-दोष) के अभाव के कारण वेदों का स्वतः प्रामाण्य सिद्ध है, तब गुण के प्रामाण्य के प्रति हेतु होने पर तथा दोषाभाव के उसके प्रति हेतु न होने पर उस [दोष] के होने पर भी गुण का अभाव होने से वेदों के अप्राकाण्य में भी अतिप्रसङ्ग हो जायेगा। [वस्तुत.] गुण और दोष का प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य के प्रति अन्वय एवं व्यतिरक के विशेष रूप में उपलब्धि नहीं होती है। अतः दोनों ही [प्रामान्य एवं अप्रामान्य] षरतः होते हैं यह सिद्ध हुआ।

(घ) **तार्किकमतनिरसनपूर्वक मीमांसकों का सिद्धान्त निर्णयः**—यहाँ बतलाते हैं। कार्यशक्ति की बाधक के अभाव में कार्य के कारण से ही कार्य के साथ ही उत्पत्ति अङ्गीकरणीय है। अन्यथा वह्निगत दाहकत्व शक्ति की भी कारणान्तर से उत्पत्ति हो सकेगी। साथ ही उत्पत्तिक्षण में उसकी दाहकता नहीं हो सकती है। जब कि वह्नि अपने आश्रयीभूत वस्तु का दहन करते हुए ही अद्भुत होती है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि स्वतः ही प्रामाण्य होता है, किन्तु अप्रामाण्य भी स्वतः होता है यह नहीं मानना चाहिए क्योंकि उसके

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत् पुनः प्रमाज्ञानहेत्वतिरिक्तहेत्वधीना कार्यत्वे सति तद्विशेषत्वाद् अप्रमावद् इत्यनुमानम् । तद् असाधकम् । प्रमा गुणदोषयोरन्यतराधीना न भवति ज्ञानत्वात् अप्रमावत्, इत्यनेन अनुमानेन निर्विशेषणहेतुजत्वेन शीघ्रप्रवृत्तेन विशेषविषयत्वेन च प्रबलेन बाधितविषयत्वात् । तस्य च सविशेषणहेतुजत्वेन विलम्बितप्रवृत्तत्वाद् दौर्बल्यम् । तस्माद् उत्पत्तावपि ज्ञानहेतुमात्राधीनत्वेन प्रामाण्यं स्वत एव । अप्रामाण्यं तु दोषाधीनत्वात् परत इति सिद्धम् ।[1]

ततश्च वेदानामपि अपौरुषेयत्वेन शब्दगतगुणदोषाणां शङ्कितुमपि अशक्यत्वेन सुतरां स्वत एव प्रामाण्यमिति निरवद्यम् ।

दोष के साथ अन्वय और व्यतिरेक का अनुविधायी होने के कारण उसमें ज्ञान के हेतु मात्र से जन्यत्व का अभाव हो जाता है। ठीक है, ऐसा ही हो। (किन्तु) यदि प्रामाण्य ज्ञान के हेतु मात्र के अधीन होता है तब तो स्मृति का भी प्रामाण्य सिद्ध हो जाता है [यदि ऐसा कहें तो ?] तो ऐसा नहीं हैं क्योंकि प्रामाण्य शब्द के द्वारा तथाभूत अर्थ की अब धारक शक्ति ही विवक्षित है और वही ज्ञान के हेतु मात्र शब्द के अधीनत्व के द्वारा भी समर्थित है। अन्यथा नैयायिक मत में भी अप्रामाण्य के दोषाधीन होने से उसके अभाव में स्मृति में भी प्रामाण्य सम्भव हो जायेगा।

जो पुनः 'प्रमा ज्ञान-हेतु से अतिरिक्त हेतु के अधीन है, क्योंकि कार्य होने से यह उसका विशेष है, यथा अप्रमा होती है, यह अनुमान करते हैं। वह असाधक है। क्योंकि प्रमा गुण और दोष में से किसी के अधीन नहीं होती, क्योंकि 'यह एक ज्ञान है जिस प्रकार कि अप्रमा इस प्रकार विशेषण (उपाधि) से रहित हेतु द्वारा उत्पन्न होने के कारण शीघ्र प्रवृत्त हो जाने वाले तथा विशेष-विषयत्व होने से प्रबल पड़ने वाले अनुमान के द्वारा वह बाधित विषय हो जाता है। क्योंकि वह विशेषण (उपाधि) से युक्त हेतु से उत्पन्न होने से सविलम्ब प्रकृति होने के कारण दुर्बल है। इस कारण उत्पत्ति होने पर भी ज्ञान के हेतु मात्र के ही अधीन होने से प्रामाण्य स्वतः ही है। अप्रामाण्य तो दोषाधीन होने से परतः ही होता है, यह सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार वेदों के भी अपौरुषेय होने से (शब्दमय रूप न होने के कारण) शब्दगत गुण और क्षेषों की शङ्का के भी असम्भव होने से अन्ततः प्रामाण्य स्वतः ही होता है यह निर्दुष्ट सिद्धान्त [प्रतिपादित] हुआ।

---

१. 'सिद्धे' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१०)

वेदापौरुषेयत्वविरूपणम्

स्याद् एवं, यदि वेदानाम् अपौरुषेयत्वं भवेत्। तदेव असिद्धम्। तथा हि वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वात्। यद् उक्तसाधनं[1] तद् उक्तसाध्यम्। यथा भारतादिवाक्यम्। उक्तसाधनानि च वेदवाक्यानि। तस्मात् पौरुषेयाणि वेदवाक्यानि। पौरुषेयत्वं नाम स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकत्वम् अभिमतम्। अतः क्रमवन्तो वर्णाः पदम्। क्रमवन्ति च पदानि वाक्यम्। क्रमश्च नित्यवर्णेषु[2] स्वत एवासम्भवाद्[3] उच्चारणक्रमनिबन्धन एव। उच्चारणक्रमश्च पुरुषप्रयत्नसाध्य एवेति वेदवाक्यान्यपि क्रमवत्त्वेन पुरुषप्रयत्ननिष्पाद्यान्येवेति सिद्धसाध्यत्वं वदताम् अनवकाश एव। ननु किमत्र साक्षात्स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकत्वं[4] विवक्षितम् आहोस्वित् परम्परया? नाऽऽद्यः। इदानीम् उच्चार्यमाणेषु बाधितविषयत्वात् अनुवक्तृप्रणीतास्मदादिवाक्येषु अनैकान्तिकत्वाच्च। नापि द्वितीयः। साक्षात् स्वतन्त्रपुरुषप्रणीतेषु अस्मदादिवाक्येषु अनैकान्तिकत्वादिति चेत्? नैवम्। साक्षात्परम्परात्वयोः परस्पर-

(१०)

वेदों का अपौरुषेयत्व-निरूपण

पूर्वपक्षः—ऐसा हो सकता है, यदि वेदों का अपौरुषेयत्व हो। [किन्तु] वही असिद्ध है, यथा, वेद वाक्य पौरुषेय है, क्योंकि वे वाक्य हैं। जो भी उक्त साधन वाले (वाक्य रूप) होते हैं वे उक्त साध्य वाले (पौरुषेय) होते हैं, यथा भारतीय वाक्य। वेदवाक्य भी उक्त साधन वाले हैं, इस कारण [ये] वेदवाक्य भी पौरुषेय हैं। पौषेरुयत्व का तात्पर्य स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकत्व (स्वतन्त्रपुरुषकर्तृकत्व) से है। इस प्रकार [जबकि] क्रमवान् वर्ण ही पद होते हैं, एवं क्रमवान् पद ही वाक्य होते हैं, तथा क्रम नित्य वर्णों में स्वतः असम्भव होने से उच्चारण क्रम निबन्धन (उच्चारण क्रम हेतुक) ही हो सकता है। उच्चारण क्रम भी पुरुषप्रयत्न द्वारा ही साध्य है, तब वेदवाक्यों के भी क्रमवान् होने से ये पुरुष प्रयत्न द्वारा ही निष्पाद्य हो सकते हैं, इस भाँति [वेदों का] सिद्धसाध्यत्व बतलाने वालों के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता है। किन्तु [यहाँ एक प्रश्न उठता है कि] यहाँ साक्षात् स्वतन्त्र पुरुष का कर्तृत्व विवक्षित है अथवा परम्परया।

१. 'उक्तं सा' क ख। २. 'विव' क ख।
३. 'वो उच्चा' क ख। ४. 'साक्षात्कारात् स्व' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यभिचारेऽपि साक्षात्परम्परात्वयोरन्यतरस्यैवात्र विवक्षितत्वात्। अन्यथा भारतादिवाक्यान्यपि यानि कृष्णद्वैपायनादिना साक्षात् प्रणीतानि न तानि परम्परया, यानि परम्परया न तानि साक्षात् इति उभयानुगतपौरुषेयत्वाभावेन अन्यतरस्य अपौरुषेयत्वप्रसङ्गात्। तस्माद् यद् वाक्यं तत् साक्षात् परम्परया वा स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकम् इति साधयतां न क्वचिद् बाधो न व्यभिचारश्चेति सिद्धं वेदाः पौरुषेया इति।

उत्तरपक्षः

तद् इदम् असमञ्जसम्। तथा हि सर्वत्र वाक्येषु वृद्धव्यवहारावगतपदपदार्थसम्बन्धस्य चक्षुरादिजन्यतत्तत्पदार्थविशेषविषयपरस्परविलक्षणक्षणिकज्ञानवतः

प्रथम तो सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर इस सयय उच्चार्यमाण (वाक्य) बाधित विषय हो जायेंगे, एवं वक्ता के द्वारा प्रणीत होने के बाद हमारे द्वारा [उच्चार्यमाण उक्त] वाक्यों में अनैकान्तिकत्व आ जायेगा।

द्वितीय पक्ष भी सम्भव नहीं है। क्योंकि ऐसा होने पर साक्षात् स्वतन्त्र पुरुष [के रूप में] हमारे द्वारा पुनीत वाक्यों में भी अनैकान्तिकत्व आ जायेगा ? ऐसा यदि कहें तो ? ऐसा नहीं है क्योंकि साक्षात्त्व एवं परम्परात्व के परस्पर व्यभिचारी होते हुए भी इनमें साक्षात्त्व एवं परम्परात्व में से कोई भी एक यहाँ विवाक्षित है (अर्थात् पौरुषेयत्व के सम्बन्ध में साक्षात्त्व या परम्परात्व विशेष का कोई प्रतिबन्ध नहीं है) अन्यथा भारतादि वाक्य भी जो कृष्णद्वैपायनादि के द्वारा साक्षात् प्रणीत है वे परम्परया प्रणीत नहीं हैं एवं जो परम्परया प्रणीत है वे साक्षात् प्रणीत नहीं है इस प्रकार दोनों में अनुगत पौरुषेयत्व के [एक साथ ही] सम्भव न हो सकने से इनमें से किसी एक में [अनिवार्यतः] अपौरुषेयत्व होने का प्रसङ्ग आ जायेगा। इस कारण से जो भी वाक्य है वह साक्षात् अथवा परम्परया स्वतन्त्र पुरुष पूर्वक है यह साधन करने में न तो कोई बाध होगा और न व्यभिचार, इस भाँति यह सिद्ध हो गया कि वेद पौरुषेय हैं।

मीमांसक उत्तरपक्षः—यह सब (प्रतिपादन) असमञ्जस (भ्रान्ति जनक या चिन्त्य) है। यथा, सर्वत्र वाक्यों के अन्तर्गत वृद्ध व्यवहार के द्वारा पद एवं पदार्थ का सम्बन्ध अवगत करने वाले तथा नेत्र आदि द्वारा उत्पन्न विविध पदार्थ विशेष विषयक एवं परस्पर विलक्षण क्षणिक ज्ञान वाले शरीरधारी (मनुष्य) का ही स्वतन्त्रकर्तृत्व देखा जाता है, इस भाँति वाक्यत्व उस प्रकार के [शरीरी के] के कर्तृत्व द्वारा व्याप्त होता हुआ अपने व्यापक (शरीरिकत्व)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शरीरिण एव स्वतन्त्रकर्तृत्वं दृष्टमिति वाक्यत्वं तादृशकर्तृत्वेन व्याप्तं सत् स्वव्यापकं पक्षे साधयत् स्वाभिमतम् अशरीरिकर्तृकत्वं विरुणद्धीति विशेषविरुद्धत्वात् हेतोः। न चास्योत्तरस्य उत्कर्षसमायाम् अन्तर्भावः। सर्वत्र वाक्यत्वस्य हेतोः शरीरिकर्तृकत्वेन व्याप्ततया दृष्टत्वात्।

स्याद् एतत्। अस्तु तर्हि अत्रापि अनित्यज्ञानेच्छादिमतः शरीरिण एव कर्तृत्वम्। न च योग्यानुपलब्धिबाधः चिरवृत्ते कर्तरि उपलब्धियोग्यत्वस्यैवं अभावात्। एतदपि न चतुरचेतसां चेतसि चमत्कारं प्राञ्चति। अपसिद्धान्तापातात्। किं च यदि वेदवाक्यानां शरीरी कर्ता स्यात् तस्य चिरवृत्तत्वेन उपलब्ध्यंभावेऽपि असौ स्मृतिपथमवतरेत्। न च स्मर्यते। तस्मान्नास्त्येव कर्तेति निश्चीयते।

स्याद् एतत्। केनचिद् अस्मरणं वा हेतुः आहोस्वित् सर्वैरस्मरणम्। नाऽऽद्यः। देवदत्तेन अस्मृतस्यापि घटस्य विष्णुमित्रगृहे विद्यमानत्वात्। नापि द्वितीयः। जैमिनीयैरस्मरणेऽपि कणादाक्षचरणपक्षिलमुनिपक्षपातिभिः स्मर्यमाणत्वाद् इति। न। तदीयैरपि वृद्धव्यवहारावगतपदपदार्थसम्बन्धस्य तदर्थविषयविलक्षणक्षणिकचक्षुरादिजन्यवेदनस्य मातापितृसम्बन्धैंप्रसूतपार्थिवशरीरस्य

का पक्ष में साधन करता हुआ विशेष के विरुद्ध होने रूप हेतु के द्वारा अपने अभिमत (अभिप्रेत) अशरीरीकर्तृकत्व के विरुद्ध पड़ता है, और इसका उत्तरोक्त उत्कर्षसमा अन्तर्गत अन्तर्भाव भी नहीं हो सकता क्योंकि वाक्यत्व का हेतु [सर्वत्र] शरीरिकर्तृकत्व के द्वारा ही व्याप्त दृष्ट होता है।

ऐसा ही हो। तब भी यहां अनित्य ज्ञानेच्छादि से युक्त शरीरी का ही कर्तृत्व हो सकता है, साथ ही यहाँ योग्य की अनुपलब्धि का बाध भी नहीं है क्योंकि कर्ता के चिरवृत्त (बहुत कालपूर्व होने से) उसमें [इस समय] उपलब्ध होने की योग्यता का सर्वथा अभाव है, [यदि ऐसा मानें तो ?] यह उक्ति भी विदग्ध चित्त वाले पुरुष के चित्त में अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाती है क्योंकि यहाँ अपसिद्धान्त की आपत्ति हो जाती है। पुनश्च, यदि वेद वाक्यों का कर्ता शरीरी हो तो उसके चिरवृत्त होने के कारण उसकी (कर्ताकी) उपलब्धि के अभाव में भी वह स्मृतिपथ में अवतरित हो जाता, किन्तु उसका स्मरण नहीं किया जाता है। फलतः कर्ता नहीं है यह निश्चित होता है।

ठीक है। ऐसा ही हो। किन्तु किसी एक के द्वारा अस्मरण [अकर्तृत्व] में हेतु है अथवा सबके द्वारा अस्मरण। प्रथम तो स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि देवदत्त

---

१. 'उपलब्ध्यंयो' क 'उपलब्धयो' ख। २. 'त्वस्मेव' क ख।
३. 'लब्धाभावे' क ख। ४. 'वृद्ध' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्तुरस्मरणात्। तदेवं वेदवाक्येषु यादृशस्य स्वतन्त्रपुरुषस्य ते स्मरन्ति तादृशस्य वाक्यत्वम् अस्मत्परिपन्थित्वेन न निरोधकम्। जैमिनीयैस्तु सर्वैः स्मर्तुं योग्यस्यापि अस्मरणाद् योग्यस्मृत्यनुदय एव बाधक इति वाक्यत्वं हेतुः [1]विरुद्धसमस्तसविशेषत्वेन स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकत्वमपि साधयितुम् असमर्थं इति सिद्धो विशेषविरोधस्तस्य। स्याद् एतत्।

"अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।"

"ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्।"

"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥"

इत्यादयो वेदकारणवादा वेदस्य पौरुषेयत्वे प्रमाणमिति। तद् अयुक्तम्। तेषां परस्परविरुद्धार्थतया प्रमाणान्तरप्रतिहततया च "प्रजापति × × × अत्मनो वपाम्

के द्वारा विस्मृत घट भी विष्णुमित्र के घर में विद्यमान होता है। द्वितीय पक्ष भी नहीं स्वीकार्य है। क्योंकि जैमिनि मतानुयायियों (मीमांसकों) के द्वारा स्मरण न किए जाने पर भी कणाद, अक्षचरण (गौतम), पक्षिल मुनि के अनुयायियों के द्वारा पद एवं पदार्थ का सम्बन्ध अवगत करने वाले, उसके अर्थ विषयक विलक्षण एवं क्षणिक चक्षु आदि से उत्पन्न ज्ञान वाले एवं माता पिता के सम्बन्ध से उत्पन्न पार्थिव शरीर धारण करने वाले किसी [विशेष] कर्ता का स्मरण नहीं किया जाता है। इस भाँति वेद वाक्यों में वे जिस प्रकार के स्वतन्त्र पुरुष का स्मरण करते हैं उस प्रकार के [कर्ता] का वाक्यत्व हमारा परिपन्थी होता हुआ विरोधी नहीं है। सभी जैमिनि मतानुयायि विद्वानों के द्वारा स्मरण करने योग्य का भी स्मरण न करने से योग्य की स्मृति का अनुदय ही बाधक होता है, इस प्रकार वाक्यत्व रूप हेतु समस्त सविशेषों का विरोधी होने से स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकत्व का भी साधन करने में असमर्थ होते हैं इस प्रकार उसका विशेष विरोध सिद्ध होता है।

ठीक है। यह हो सकता है। [किन्तु]

"इसके पश्चात् उसके मुखों से वेद विनिर्गत हुए।"

"ऋग्वेद ही अग्नि से उत्पन्न हुआ, यजुर्वेद वायु से [एवं] सामवेद आदित्य से [उत्पन्न हुआ][2]।"

"सबके द्वारा आहुति प्रदान किए गए उस यज्ञ से ऋचाएँ एवं साममन्त्र उत्पन्न हुए, उससे छन्द (अथर्व मन्त्र) एवं यजुर्मन्त्र भी प्रादुर्भूत हुआ।"[3]

---

१. 'विरुद्ध' क ख। २. ऐ० ब्रा० ५।३२। ३. ऋ० १०।९०।९।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उदखिदत्" इत्यादिवत् अर्थवादत्वेनापि उपपत्तेः स्वार्थे तात्पर्याभावात्। काठकादिसमाख्यापि प्रवचननिबन्धनैव भविष्यति इति सिद्धं वेदानाम् अपौरुषेयत्वम्।

(११)

शब्दनित्यत्वम्

अत एव च नित्यत्वम्। तन्नित्यत्वम् असहमानाः शुष्कतार्किका वैदिकान्[3] प्रति विवदन्ते प्रयुञ्जते च शब्दानित्यत्वेऽनुमानम्। शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात्, यत् कृतकं तद् अनित्यं दृष्टम्, यथा घटः तथा चायं कृतकः। तस्माद् अनित्य एवेति। एतद् अधीरम्। एतच्च पर्वतादौ धर्मिणि प्रत्यक्षे यथा वह्न्याद्यनुमानं तादृशं तार्किकैरङ्गीकरणीयम्। ततश्च एतदनुमानबलादेव शब्दस्य नित्यत्वसिद्धिः।

इत्यादि वेद कारणवाद (वेदों का कारण बतलाने वाले वचन) वेद के पौरुषेयत्व में प्रमाण हैं, [यह मानें तो ?] यह ठीक नहीं है, क्योकि वे (उपर्युक्त वचन) परस्पर विरोधी अर्थ से युक्त हैं तथा प्रमाणान्तर के द्वारा बाधित भी हो जाते हैं। साथ ही "प्रजापति ने अपनी वपा को उत्खिन्न किया"[7] इत्यादि की भाँति अर्थवाद के रूप में उपपत्ति होने से भी इनका स्वार्थ (अपने स्वकीय अर्थ) में तात्पर्य का अभाव होता है। काठक आदि समाख्या भी तो प्रवचन निबन्धन (व्याख्यानापेक्ष) ही होते हैं होंगे इस भाँति वेदों का अपौरुषेयत्व सिद्ध हुआ।

(११)

शब्द का नित्यत्व

तार्किकों का मत निरूपण एवं निरास :—अतएव (शब्द) नित्यत्व है। इस नित्यत्व को न सहन करते हुए शुष्कतार्किक वैदिकों के साथ विवाद करते हैं एवं शब्द के अनित्यत्व में अनुमान का प्रयोग करते हैं। शब्द अनित्य है, क्योंकि कृतक (कार्य) है, जो भी कृतक होता है वह अनित्य देखा जाता है, यथा घट, उसी प्रकार का कृतक यह [शब्द] भी है। इस कारण से अनित्य ही है। यह अधीर (अमर्षणीय) है। यह पर्वतादि धर्मी (पक्ष) के प्रत्यक्ष होने पर जिस भाँति वह्नि आदि का अनुमान होता है, उसी भाँति तार्किकों के द्वारा स्वीकरणीय है। तब इसी अनुमान के बल से शब्द

---

१. 'मुदत्खिदत्' क ख। २. 'अर्थवेद' क ख। ३. 'वेदिकान्' क ख।
४. 'कृतं' क ख। ५. 'एतधीरम्' क ख। ६. 'धर्मणि' क ख।
७. तै० सं०, २।१।१।४।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा हि। अणवोऽनित्याः मूर्तत्वात् घटवत् इत्यनुमाने यथा धर्मिग्राहकप्रमाण-बाधो दोषः तथा शब्दकृतकत्वानुमानेऽपि। तथा हि। शब्दः कथं प्रत्यक्षो देवानां प्रियस्य यो धर्मी। कृतस्य अनित्यत्वोऽन्नित्यत्वशून्य इति चेत्? तर्हि वक्तव्यं किं धर्मद्वयस्य अभाववान् उत तद्भाववान्। उभयथापि बाधः अन्यथा प्रत्यक्षम् अर्थम् अन्यथा साधयतः। ननु वादिबुद्धिविशेषाद् धर्मद्वयम् आपतति न तु वस्तुविशेषात्। वस्तुनि द्वैरूप्यायोगात्। ततश्च यस्मिन् वादिविप्रतिपत्तौ सत्यां धर्मद्वयम् आपतति[2] स शब्दः [3]पक्ष इत्यङ्गीकारे कथं बाधः। एवम् अनङ्गीकारे सर्वानुमानोच्छेदप्रसङ्गः।

अस्त्वेवम् अन्यत्र। शब्दे तु वैषम्यम् अस्ति। शब्दः किं धर्मित्वेन प्रतीतः प्रत्यक्षव्याप्तिपक्षधर्मतयोराश्रयः उत्पत्तितः उत्तरक्षणेषु स एव तिष्ठति वा, न

के नित्यत्व की भी सिद्धि हो सकती है। स्पष्टता के लिए, अणु (वैशेषिक प्रतिपाद्य) अनित्य हैं क्योंकि ये घटवत् मूर्त हैं इस अनुमान में जिस भाँति धर्मी के ग्राहक (बोध कराने वाले) प्रमाण का बाध दोष है उसी प्रकार शब्द के कृतकत्व से सम्बन्धित अनुमान में भी [उक्त दोष] है। स्पष्टार्थ, शब्द देवताओं के प्रिय (मूढ़मति) को किस प्रकार प्रत्यक्ष हो गया, जो कि धर्मी है? कृत (कार्य) के अनित्य होने से यह नित्यत्व रहित होता है, ऐसा यदि कहें तो? तब यह बतलाना चाहिए कि ये दोनों धर्मों (कृतत्व एवं अनित्यत्व) का अभाववान् स्वतः (इनसे रहित) है अथवा सत्भाववान् (इनसे सहित) है। दोनों ही प्रकार से बाध हो जाता है, अन्यथा दोनों प्रत्यक्ष अर्थ का अन्यथा (अन्य रूप में) साधन करते हैं। यदि कहें कि वादी की बुद्धि विशेष के कारण दोनों धर्म आपतित होते हैं, कि वस्तु विशेष के कारण क्योंकि एक ही वस्तु में द्वैरूप्य (दो रूपों) का योग सम्भव नहीं है [और] तब जिस [धर्मी] में वादी की विप्रतिपत्ति (सन्देह बुद्धि) होने पर धर्मद्वय आपतित होता है वह शब्द ही यथा है, इसे स्वीकार करने में कैसे बाध हो जायगा? इस प्रकार से अङ्गीकार न करने पर तो समस्त अनुमानों का मूलोच्छेद ही हो जायेगा (क्योंकि अनुमान के अन्तर्गत हेतु और साध्य रूप दोनों धर्म एक ही पक्ष रूपी धर्मी में आश्रित होते हैं)।

[इसका सामाधान यह है कि] ऐसा अन्यत्र सम्भव हो सकता है। शब्द में तो वैषम्य होता है। शब्द क्या धर्मी के रूप में प्रतीत होता है? [यदि होता है तब] प्रत्यक्ष [दृष्ट] व्याप्ति एवं पक्षधर्मता का आश्रय रूप वह [शब्द] उत्पत्ति के उत्तरवर्ती क्षणों में भी वही (यथावत्) रहता है अथवा नहीं रहता

---

१. 'त्वानि' क ख। २. 'पतसि' क ख। ३. 'ब्दप' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वा। यदि न तिष्ठति, आश्रयसिद्ध्यादिदोषः। यदि तिष्ठति, तर्हि अनेकक्षणावस्थायित्वात् क्षणिकत्वभङ्गः। अथ च शब्दत्वजातिमान् शब्दस्तिष्ठतीति चेत्? तत्रापि विचारयत्वायुष्मान्। किं जातिस्तिष्ठति? उत व्यक्तिरपि? यदि जातिस्तिष्ठति व्यधिकरणासिद्ध्यादिदोषः। न हि शब्दत्वजातिः पक्ष इति भवद्भिरेवोक्तम्। अनित्यव्यक्तेश्चावस्थाने पूर्वोक्तदोषावकाशः। अथ च काचन व्यक्तिस्तिष्ठति। तदापि शब्दव्यक्तीनां धर्मित्वाङ्गीकाराद् भागासिद्धो हेतुः। न हि भविष्यच्छब्दः इदानीं वर्तमानस्य कृतकत्वस्य हेतोराश्रयो भवति। कृतकत्वं नाम करणव्यापारविषयत्वम्। तच्च कालत्रयासंस्पृष्टं सर्वशब्देषु वर्तते इति हेतोर्न भागासिद्धिरिति चेत्। अहो पाण्डित्यं तार्किकस्य। यत्र कालत्रयसंस्पृष्टशब्दबुद्धिः स्वयं कालत्रयातीतं प्रत्यक्षीकृतवान् इति। ततः प्रत्यक्षाभावेऽनुमानमपि दूरापास्तम्। ततः अस्मिन्ननुमाने पर्वतादिवत् स्थायी वर्तमानः शब्दः पक्षत्वेनाङ्गीकरणीयः। तस्य धर्मिणः अनित्यत्वसिद्धौ अपरेषां भविष्यदादिशब्दानामपि शब्दत्वेन हेतुना अनित्यत्वं साधनीयम्। एवं च महीमहीधरादिकृतकत्वानुमानवत्

है। यदि वहीं नहीं रहता है, तब आश्रयासिद्धि आदि दोष आ जाता है। यदि वही रहता है, तब अनेक क्षण तक स्थायी होने से [आपका] क्षणिकत्व सिद्धान्त भङ्ग हो जायेगा। अब यदि कहें कि शब्दत्व जाति से युक्त शब्द रहता है? तब भी आयुष्मान्! विचार कीजिए, क्या [उस समय] जाति रहती है अथवा व्यक्ति भी रहती है? यदि जाति रहती हैं तो व्यधिकरणासिद्धि आदि दोष आ जाते हैं। शब्दत्व जाति पक्ष नहीं है, यह आप सब ने ही कहा है तथा अनित्य व्यक्ति के अवस्थान (स्थिति) में पूर्वोक्त दोष के लिए अवकाश रह जायेगा। अब यदि [शब्द के विभिन्न क्षणोत्पन्न व्यक्तियों में से] कोई न कोई एक व्यक्ति उस समय रहती हैं। तथ भी शब्द व्यक्तियों का धार्मित्व स्वीकार कर लेने पर हेतु भागासिद्ध (धर्मी या पक्ष के एक भाग में असिद्ध) हो जायेगा। भविष्यत्कालीन शब्द इस समय विद्यमान कृतकत्व रूप हेतु का तो आश्रय होने से रहा। [अब] कृतकत्व का अभिप्राय तो करणव्यापार का विषयत्व है, वह कालत्रय से असंस्पृष्ट (असम्बद्ध या निरपेक्ष) होता हुआ समस्त शब्दों में वर्तमान रहता है। अतः हेतु में भागासिद्धि-दोष नहीं है, ऐसा कहें तो? तब धन्य है तार्किकों का पाण्डित्य! जो कि कालत्रय के द्वारा संस्पृष्ट शब्द बुद्धिवाला होते हुए भी कालत्रय में अतीत का प्रत्यक्षोकरण कर लेता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष के अभाव में अनुमान भी दूर हो जायेगा। इस कारण से इस अनुमान में पर्वतादि की भाँति स्थायी वर्तमान शब्द पक्ष के रूप में स्वीकरणीय है। उस धर्मी की अनित्यत्व

१. 'त्यत्वव्य' क ख। २. 'धर्मिणः' क ख। ३. 'मन्यतत्वम्' क ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्दकृतकत्वानुमानमपि परास्तं वेदितव्यम्। शब्दग्राहि च प्रमाणं तं कृतकत्व-शून्यमेव गृह्णातीति महीमहीधरवत् इति धर्मिग्राहकप्रमाणबाधस्त्वदुक्तो हेतुः अन्यतरासिद्धश्च। तस्मान्नित्यः शब्दः।

स्फोट एव नित्यः शब्दः

सोऽपि स्फोट इति शाब्दिकाः शब्दायन्ते। तत्रेमां श्रुतिं प्रमाणयन्ति।

शब्दब्रह्म यदेकं यच्चैतन्यं च सर्वभूतानाम्।
यत्परिणामस्त्रिभुवनम् अखिलम् इदं जयति सा वाणी॥

अस्य अयम् अर्थः। शब्द एव ब्रह्म। तद् एकम्। एकं च स्फोटव्यतिरिक्तम् अन्यन्न संभवति, वर्णानाम् अनेकत्वात्। अत एव न ध्वनयोऽपि। पदवाक्ययोरेकत्वशङ्कापि नास्त्येव वर्णैर्विरचितत्वात् तेषाम्। ध्वनिवर्णपदवाक्येभ्यो [2]वा नान्यः शब्दः प्रसिद्धोऽस्ति लोकवेदयोः। शब्दब्रह्मेति पठन्ति लौकिका वैदिकाश्च। पदज्ञा अपि एवम् आहुः। "एकम् अक्षरम् एकं पदम् एकं [3]वाक्यम्" इति। उत्पन्नापवर्गिष्वनेकेषु वर्णेषु एकबुद्धेर्विषयः स्फोटः बृहत्त्वाद् ब्रह्मशब्दाभिधेयः। स्फुटयते अर्थः प्रकाश्यते [अनेन] इति स्फोटः।

सिद्धि में अन्य भविष्यत् आदि शब्दों का भी शब्द होने से (अथवा शब्दत्व रूप हेतु के द्वारा) अनित्यत्व साधनीय हो जाता है, इस भाँति मही महीधरादि के कृतकत्वानुमान की भाँति शब्द का कृतकत्वानुमान भी अपास्त (निरर्थक) ही जानना चाहिए, तथा शब्दग्राही प्रमाण उस (शब्द) को कृतकत्व शून्य ही ग्रहण करता है, यह मही महीधरवत् है इस प्रकार धर्मिग्राहक प्रमाण का बाध हो जाता है और तुम्हारे द्वारा उक्त हेतु भी अन्यतरासिद्ध हो जाता है। इस कारण से शब्द नित्य है।

(ख) (i) **स्फोटवादी (शाब्दिक) मत का उपन्यास**—वह भी स्फोट रूप होता है ऐसा शाब्दिक कहते हैं। उसमें इस श्रुति को प्रमाणस्वरूप उद्धृत करते हैं।

जो शब्द ब्रह्म रूप एक ही है, जो समस्त प्राणियों का चैतन्य है, जिसका परिणाम (कार्य) यह सम्पूर्ण जगत् है वह वाणी जय को प्राप्त होती है।

इसका यह अर्थ है। शब्द ही ब्रह्म है। वह एक है। वह एक स्फोट से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि वर्ण अनेक होते हैं। इसी कारण ध्वनियाँ भी [शब्द-ब्रह्म] नहीं हो सकती। पद एवं वाक्य के एकत्व की शङ्का भी नहीं हो सकती क्योंकि वे [भी] वर्णों के द्वारा ही विरचित होते हैं। ध्वनि भी लोक और वेद में वर्ण, पद और वाक्य से भिन्न अन्य किसी शब्द के रूप में प्रसिद्ध

Funding by IKS-MoE

---

१. 'धर्मिग्राहिक' क ख। २. 'वाक्येवाभ्यो' क ख। ३. 'एके' ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ननु अर्थाभिव्यञ्जकश्चेच्छब्दस्तर्हि वर्णात्मक[1] एव सः। ज्ञातेषु वर्णेषु अर्थो ज्ञायत[2] इति प्रसिद्धिः। नैतत्। वर्णात्मकशब्दः अर्थप्रत्यायक इति कोऽर्थः। एकैको वर्णः अर्थप्रत्यायकः, उत अनेक इति। न तावद् एकैकः। अकारादीनां वर्णानां प्रत्येकं वर्णोच्चारणे अर्थप्रतीतेरभावात्। न च अव्ययानां तिरस्काराद्यर्थं प्रत्यायकत्वं दृष्टमिति मन्तव्यम्। "अव्ययादाप्सुपः"[3] इति विभक्तौ लुप्तायां तेषाम् अर्थप्रत्यायकत्वात् न तु प्रातिपदिकावस्थायाम् ततश्च अ इ उ इति वर्णानां तिरस्काराश्चर्यादरार्थानां[4] तेषां पदात्मकत्वेन अनेकवर्णात्मकत्वात्। न हि अदर्शनमात्रेण विभक्तिवर्णानाम् असत्त्वम्। तथात्वे संबुद्धि-

नहीं है। 'शब्द ब्रह्म है' ऐसा लौकिक एवं वैदिक आचार्य पढ़ते हैं, पदज्ञों (वैयाकरणों) ने भी ऐसा कहा है। "एक अक्षर, एक पद एवं एक ही वाक्य होता हैं। उत्पन्नापवर्गी (उत्पत्ति विनाशवान्) अनेकों वर्णों के अन्तर्गत एकबुद्धि का विषयभूत स्फोट ही बृहत् (व्यापक) होने से ब्रह्म-शब्द के द्वारा अभिधेय होता है। 'अर्थ इसके' द्वारा स्फुटित होता है अर्थात् प्रकाशित होता है, इस कारण यह स्फोट [कहलाता] है।

यदि शब्द अर्थाभिव्यञ्जक है तब तो यह वर्णात्मक ही है। वर्णों के ज्ञात होने पर ही अर्थ ज्ञात होता है, यह प्रसिद्धि है, ऐसा कहें तो ? [वस्तुतः] वर्णात्मक शब्द अर्थ का प्रत्यायक नहीं है [यदि प्रत्यायक है तो] वह अर्थ क्या है ? फिर [प्रश्न उठता है कि] एक-एक वर्ण [अलग-अलग] अर्थ का प्रत्यायक होता हैं अथवा अनेक वर्ण (मिलकर)। एक-एक वर्ण तो अर्थ प्रत्यायक हो नहीं सकता है क्योंकि अकारादि वर्णों में से के किसी भी वर्ण के उच्चारण में अर्थप्रतीति नहीं होती। अव्यय तिरस्कारादि अर्थों के प्रत्यायक होते हैं ऐसा भी नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि "अव्यय के पश्चाद्वर्ती 'आप्' एवं सुप्' विभक्ति का लोप हो जाता है।" इस सूत्र के द्वारा विभक्ति के लुप्त हो जाने पर ही वे (अव्यय पद) अर्थ के प्रत्यायक होते हैं, न कि प्रातिपदिक अवस्था में ही। पुनश्च, 'अ', 'इ', 'उ' ये वर्ण भी जब पदात्मक होने से अनेक वर्ण रूप होते हैं, तभी तिरस्कार, आश्चर्य, आदर आदि अर्थों [का प्रत्यायन कर पाते हैं]। अदर्शन मात्र होने से विभक्ति वर्णों का अभाव नहीं होता है क्योंकि ऐसा होने पर सम्बुद्धि (सम्बोधन गत) पद एवं प्रातिपदिक का अर्थ एक ही हो जाता जो कि शाब्दिकों (वैयाकरणों) को अनिष्ट है, तथा अव्ययों का ही अर्थप्रत्यायकत्व होता है न कि [तद्गत] वर्णों का एक-एक करके [पृथक्-पृथक्]। एवं अव्यय भी पद विशेष होते हैं,

१. 'वर्णात्वाक' क ख। २. 'जायत' क ख। ३. पा० सू० २।४।८२।
४. 'रार्थप्रत्यायक त्वंश्चर्यादरार्थानां तेषां × × × कत्वात्' क ख।

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रातिपदिकार्थयोरेकत्वप्रसङ्गात् । अनिष्टं च तच्छाब्दिकानाम् । तथा [1]च अव्ययानामेव अर्थप्रत्यायकत्वम् न [2]वर्णानाम् एकैकशः । अव्ययानि च पदविशेषा इत्युक्तम् । एतेन उपसर्गादीनि सर्वाणि [3]व्याख्यातानि । ततः अनेके वर्णा अर्थप्रत्यायक इति वक्तव्यम् । अयमपि पक्षो न कक्षीकरणीयः । अपदात्मकस्य कचटतेत्यादिरूपस्य अर्थप्रत्यायकत्वादर्शनात् । पदात्मकोऽनेको वर्णः अर्थप्रत्यायक इति सारं स्थितम्[4] । पदं च सुबन्तं तिङन्तं वा । तच्च प्रातिपदिककृत्तद्धितधातुसमासप्रकृतिकम् । तत् सर्वं वर्णस्वरूपमेव । न तु ततोऽतिरिक्तं पदमस्ति । वर्णेभ्योऽतिरिक्तस्य पदस्य अदर्शनात् ।

ननु वर्णगतो धर्मः कश्चन पदमिति । यथा व्यक्तिगतो जातिविशेषो गोत्वमिति । एवं चेत्, एकगोव्यक्तिदर्शने गोत्वप्रतीतिवत् एकैकवर्णदर्शने पदप्रतीतिः स्यात् । ततो वर्णानां समुदायविशेषः पदमिति वक्तव्यम् । तच्च अर्थप्रत्यायकमिति वर्णनीयम् । तेन पदसमुदायविशेषो वाक्यम् इत्युपपादित

यह कहा गया है । इसी के द्वारा समस्त उपसर्गादि [भी] व्याख्यात हो जाते हैं । तब अनेक वर्णों का [सम्मिलित रूप से] अर्थप्रत्यायकत्व होता है, यह कहना चाहिए । किन्तु यह पक्ष भी स्वीकरणीय नहीं है । क्योंकि अपदात्मक (मात्र एकत्र समाविष्ट) 'कचटत' इत्यादि रूप [वर्णोच्चय] का अर्थप्रत्यायकत्व नहीं देखा जाता । पदात्मक [होते हुए] अनेक वर्ण ही अर्थ के प्रत्यायक होते हैं । यह सार निष्कर्ष स्थित (निश्चित) हुआ । पद सुबन्त अथवा तिङन्त ही होते हैं तथा इनमें प्रातिपदिक, कृत्, तद्धित, धातु, एवं समास प्रकृति रूप होते हैं । वह सब वर्णरूप ही है । उससे अतिरिक्त पद नहीं है, क्योंकि वर्णों से अतिरिक्त पद का दर्शन नहीं होता ।

वर्णगत कोई धर्म ही पद है । जिस भाँति कि [गो] व्यक्ति में स्थित जाति विशेष 'गोत्व' है, यदि ऐसा कहें तो ? एक गो-व्यक्ति के दर्शन से जिस भाँति गोत्व की प्रतीति होती है उसी भांति एक-एक वर्ण को देखने पर [सम्पूर्ण] पद की प्रतीति होनी चाहिए । तब वर्णों का समुदाय विशेष पद होता है ऐसा कहना पड़ेगा और वह अर्थ प्रत्यायक होता है, इस तरह वर्णन करना होगा । इसके द्वारा ही पद समुदाय विशेष हो वाक्य होता है, यह उपपादित हो सकेगा । क्योंकि वर्णन्याय ही पद में भी संचरण करता है । 'तब तो ऐसा ही होना चाहिए । उक्त प्रकार के [निर्दिष्ट] वर्ण ही शब्द हैं यह आपने भी कहा है इस तरह वर्ण पदवाक्यात्मक हो जाते हैं', ऐसा यदि कहें तो ? [ऐसा नही है,

---

१. 'तथाव्याधानामेकार्थ–' क ख । २. न च क ख । ३. 'व्याख्यानि' क ख ।
४. अस्पष्ट क । 'इति अयमपिपक्षो......कंसितं पदं' ख ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भवति। वर्णन्यायस्य पदे संचरणात्। ननु अस्त्वेवम्। तावता वर्णा एव शब्द इति भवताप्युक्तम्। पदवाक्यात्मकानां वर्णानाम्। अर्थप्रत्यायकत्वकथनेन[1] भावानवबोधात्। भावश्चायम्। यदि वर्णा नित्या यदि वा अनित्या उभयथापि तेषां समुदायो नोपपन्नः। नित्याना तु गुणत्वे सर्वगतद्रव्यत्वे वा पञ्चाशत्संख्याकानां तेषां मेलनं केन कर्तुं शक्यम्? न चैवं वर्णानां स्थानप्रयत्नवैयर्थ्य[2]-प्रसङ्गः। नित्यानामेव तेषां स्थानप्रयत्नाभ्यामेव अभिव्यज्यमानत्वात्। न च अभिव्यक्तेरपि समुदायः कर्तुं शक्यः। वर्णाभिव्यक्तेर्ज्ञानरूपत्वात्। ज्ञानानां च क्रमेण जायमानत्वात्। "युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिरमनसो लिङ्गम्"[3] इति न्यायात्। क्रमेण जायमानानां क्षणिकानां तेषाम् एकस्मिन् देशे काले वा मेलनस्य कर्तुम् अशक्यत्वात्। न च मेलनाद् अन्यः समुदायोऽस्ति। तस्माद् वर्णनित्यत्वेऽपि स्पष्टः समुदायाभावः। कथं वर्णसमुदायः पदं पदसमुदायो वाक्यम् अर्थप्रत्यायकं स्यात्। अस्ति तु अर्थप्रत्ययः शब्दात्। ततः शब्दतत्त्वम् अन्यदेव।

ननु एतादृशं शब्दतत्त्वं कुतः प्रतीयते। अनित्येभ्यो वर्णेभ्य इति ब्रूमः। न च तत्र उक्तानुपपत्तिः, पूर्वपूर्ववर्णसचिवान्त्यवर्णबुद्धेरिति ब्रूमः। न चैवम्

क्योंकि] अर्थप्रत्यायकत्व कथन से भाव का अवबोध (परिज्ञान) नहीं हो जाता है, जबकि यह भाव ही है। [वस्तुतः] वर्ण चाहे नित्य हों या अनित्य, दोनों ही प्रकार से इनका समुदाय उत्पन्न नहीं हो पाता है। नित्यों के गुण होने पर अथवा सर्वगतद्रव्य रूप होने पर पचास की संख्या वाले उन [वर्णों] का मेल न करने में कौन समर्थ हो सकता है? इस प्रकार से वर्णों का स्थान एवं प्रयत्न व्यर्थ हो जायेगा, ऐसी कोई बात नहीं हैं, क्योंकि नित्य होते हुए भी वे (वर्ण) स्थान एवं प्रयत्न के द्वारा अभिव्यक्त होते है। अभिव्यक्ति का भी समुदाय करना संभव हो, ऐसा भी नहीं है क्योंकि वर्णों की अभिव्यक्ति ज्ञानरूप होती है एवं ज्ञान "ज्ञानों की युगपत् (सहभाविनी) उत्पत्ति नहीं होती, यह मन का लिङ्ग नही है"[२] इस न्याय से क्रमपूर्वक ही उत्पन्न होता है। एवं क्रम से उत्पन्न होने वाले उन क्षणिक (ज्ञानों) का एक ही स्थान पर या काल में मेलन नहीं किया जा सकता है। एवं मेलन से भिन्न कोई अन्य समुदाय होता भी नहीं है। इस कारण वर्ण के नित्यत्व में भी स्पष्टतः समुदाय का अभाव है। किस प्रकार से वर्ण समुदाय पद एवं पद समुदाय वाक्य अर्थ प्रत्यायक होगा? जबकि शब्द के द्वारा अर्थ का प्रत्यय होता है। इस प्रकार से शब्दतत्व अन्य ही होता है।

यदि कहें कि ऐसा शब्द-तत्त्व कैसे प्रतीत होता है, तो हमारा उत्तर है अनित्य वर्णों के द्वारा। यहाँ (ऐसा मानने में) उक्त अनुपपत्ति नहीं है क्योंकि

Funding by IKS-MoE

१. 'नेन न' क ख। २. 'र्यं प्र' क ख। ३. न्यास १।१।१६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थप्रत्ययोऽप्येवमस्त्विति वक्तव्यम्। तथात्वे तस्य अशाब्दत्वं स्यात्। अनिष्टं च तत्। ततश्च उक्तबुद्धेः प्रतीयमानं शब्दतत्त्वम् एव बुद्धेर्विषयोऽर्थप्रत्यायक इति स्थितम्। यच्चार्थप्रत्यायकं स स्फोट इत्युक्तम्।

यत् शब्दब्रह्म एकम् एकप्रत्ययविषयः सर्वभूतानाम् स्थावरजङ्गमानां शरीरिणां चैतन्यम्। तद् उक्तम् "शुब्दब्रह्मणो व्यतिरिक्तं न चैतन्यम् अस्ति" इति। ननु चैतन्यविवर्ता इमे नानाविधा भावाः सर्वे सशब्दाः। तत् शब्दतत्त्वं स्यात्। न च अधिष्ठानम् अध्यस्तं भवति इत्यत आह—'यत्परिणामस्त्रिभुवनम् अखिलम् इदमिति'। परिणामोऽत्र विवर्तोऽभिहितः। ननुपरिणामविवर्तयोः को भेदः। अयम्। पूर्वरूपापरित्यागेन असत्यनानाकारप्रतिभासो विवर्तः यथा शुक्तिकायां रजतस्य, सर्परज्ज्वां वा सर्पस्य प्रतीतिः। पूर्वरूपपरित्यागे सति नानाकारप्रतिभासः परिणामः। यथा क्षीरस्य दधिप्रतिभासः। 'त्रिभुवनं यत्परिणाम' इत्युक्ते भौतिका भावाः शब्दब्रह्मणः परिणामाः स्युः। तद्व्युदासाय उक्तम् अखिलम् इदम् इति। इदम् जाडच¹प्रत्ययविषयः। चैतन्याद् व्यतिरिक्तं सर्वमित्यर्थः। सा स्फोटरूपा वाणी जयति॥

पूर्वपूर्व वर्णों के साथ अन्त्य वर्ण की बुद्धि (ज्ञान) होता है। ऐसा भी नहीं है कि अर्थ प्रत्यय भो ऐसे ही (इसी प्रकार होता है, क्योंकि ऐसा मानने पर इसके अशाब्दत्व (शब्दजन्य न होने) की स्थिति आ जायेगी जो कि अनिष्ट है। इस कारण से उक्त बुद्धि का प्रतीयमान शब्दतत्त्व ही बुद्धि के विषयभूत अर्थ का प्रत्यायक है यह निश्चित हुआ। तथा जो अर्थ का प्रत्यायक है वह स्फोट है यह कहा गया है।

जो शब्द ब्रह्म एक है अर्थात् एक ही प्रत्यय (प्रतीति) का विषय है एवं समस्त प्राणियों अर्थात् स्थावरजङ्गम शरीरधारियों में चैतन्य रूप है। इसे कहते हैं, "शब्द ब्रह्मसे भिन्न चैतन्य नहीं है।" चैतन्य के ही विवर्त ये सभी नाना प्रकारक भाव सशब्द है। यह शब्दतत्त्व हो सकता है। [किन्तु] अधिष्ठान (आधार) तो अध्यस्त (आधेय) हो नहीं सकता है, यदि ऐसी शङ्का कोई करे तो ? इसपर कहा जा सकता है, 'जिसका परिणाम यह सम्पूर्ण संसार है।' यहाँ परिणाम विवर्त के आशय में अभिहित है। तब परिणाम विवर्त में क्या भेद है, ऐसी शङ्का कोई करे तो ? भेद इस भाँति है। पूर्वरूप का बिना परित्याग हुए नाना [भाँति के] असत्य आकारों का प्रतिभास (प्रतीति) होना विवर्त है। यथा शुक्तिकामें रजत का अथवा सर्परज्जु (सर्पवत् रज्जु) में सर्प की प्रतीति। पूर्वरूप का परित्याग होने के पश्चात् नाना [भाँति के] आकारों का प्रतिभास ही परिणाम

Funding by IKS-MoE

---

१. 'जाड्यं' क, ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तेन एतद् उक्तं भवति शब्दब्रह्मणि चेतने सर्वप्रपञ्चविवर्ताधारे स्फोटे शब्दे शब्दाभिधेयत्वम्, न तु वर्णानाम् । तेषामपि स्फोटे अध्यस्तत्वात् । तस्मात् स्फोट एव शब्द इति ये मन्यते तेषां दुरन्तं व्यसनम् आपतितम् ।

शाब्दिकमतनिरासः

अप्रतीतस्यार्थस्य प्रतीतिः । प्रतीतस्यार्थस्य परित्यागः । तथा हि । वर्णात्मकशब्देभ्यो यथा स्फोटः शब्दः प्रतीयते तथैवार्थः प्रतीयताम् । को दोषः । न च ज्ञानव्यवधाने अशाब्दत्वं तस्यार्थस्य । स्फोटोऽपि शब्द एव । शब्दश्च ज्ञानकरणम् प्रत्यक्षव्यतिरिक्तानां करणानां ज्ञानकरणत्वाङ्गीकारात् सर्ववादिभिः । ततश्च यः स्फोटपक्षे परिहारः स एव वर्णपक्षे भविष्यति । तथा हि । पूर्वपूर्ववर्णसंस्कारसचिवोऽन्त्यो वर्णो ज्ञातः सन् अर्थं प्रत्याययिष्यति । किम् अन्तर्गडुना स्फोटेन ।।

है। यथा दूध का दधि रूप में प्रतिभास होना। त्रिभुवन जिसका परिणाम है, ऐसा कथित होने पर भौतिक भाव [ही] शब्दब्रह्म के परिणाम हो सकते हैं इसके निराकरण के लिए 'यह सम्पूर्ण [त्रिभुवन]' यह कहा गया। यह जाड्य (जडों या अचेतनों के विषय में होने वाले) प्रत्यय का विषय है। 'चेतन्य से व्यतिरिक्त सब कुछ' यह तात्पर्य है। उस स्फोटरूपा वाणी की जय होती है।

इसके द्वारा यह तात्पर्य निकलता है कि शब्दब्रह्म रूप चेतन के समस्त प्रपञ्चभूत विवर्त का आधार होने से स्फोटशब्द में शब्दाभिधेयत्व है, न कि वर्णों में। क्योंकि वे [वर्ण] भी स्फोट में ही अध्यस्त हैं। इस कारण से स्फोट ही शब्द रूप है।

२ शाब्दिक मत का निरास :—ऐसा जो मानते हैं उनके लिए अपार (दुर्निवार्य) समस्या उठ खड़ी होती है। [यहाँ] अप्रतीति (प्रतीति न होने वाले) अर्थ की प्रतीति [स्वीकार की जाती है]। प्रतीति होने वाले अर्थ का परित्याग होता है। स्पष्टता के लिए, जिस भाँति वर्णात्मक शब्दों से स्फोट शब्द प्रतीत [स्वीकृत] होता है, उसी भाँति [उसके स्थान पर] अर्थ को प्रतीति होना चाहिए (अर्थात् अर्थ की प्रतीति मानी जाय)। क्या दोष है ? और ज्ञानव्यवधान के कारण उस अर्थ का अशाब्दत्व भी नहीं होगा। स्फोट भी तो [आपके मतानुसार] शब्द ही है, और शब्द ज्ञान रूपकरण (साधकतम हेतु) वाला है क्योंकि प्रत्यक्ष से व्यतिरिक्त समस्त करण ज्ञान रूप करण से युक्त रूप में समस्त वादियों (विविध मतानुयायी विद्वानों) के द्वारा स्वीकृत होते हैं। इस प्रकार स्फोट के पक्ष में जो परिहार है वही वर्णों के पक्ष में होगा। स्पष्टता के लिए, पूर्व पूर्व वर्णों के संस्कार से युक्त अन्तिम वर्ण ज्ञात होता हुआ अर्थ का

Funding by IKS-MoE

---

१. 'ज्ञातं' क, ख। २. 'ज्ञातं' क, ख। ३. 'गलुना' क, ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्माद् अपौरुषेयत्वाद् नित्यत्वाद् विवक्षितार्थत्वाच्च कृत्स्नस्यापि वेदराशे-स्तदन्तर्गतस्य ब्रह्मवेदस्यापि विवक्षितार्थत्वेन व्याख्येयतासिद्धिः ॥

(१२)

अथर्ववेदव्याख्यानस्य त्रयीव्याख्यानानन्तयोपदादनम्

तथापि कथमस्य अन्ते व्याख्येयता। वेदानां क्रमेण अभिव्यक्तिप्रतिपादक-श्रुतिवशात् इति ब्रूमः। सा च अथर्ववेदस्य पूर्वब्राह्मणे प्रणवप्रशंसावसरे श्रूयते। "ब्रह्म ह वै[1] ब्रह्माणं पुष्करे[2] ससृजे। स खलु ब्रह्मा सृष्टश्चिन्ताम् आपेदे। केनाहम् एकेनाक्षरेण सर्वांश्च लोकान् सर्वांश्च देवान् सर्वांश्च वेदान् सर्वांश्च यज्ञान् सर्वांश्च शब्दान् सर्वांश्च व्यष्टी[3] सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यनुभवेयम्[4] इति। स ब्रह्मचर्यम् अचरत्। स ओम् इत्येतद् अक्षरम् अपश्यत् त्रिवर्णं[5] चतुर्मात्रं सर्वव्यापि" इत्यादि "तस्य प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीम् अग्निम् ओषधिवन-स्पतीन् ऋग्वेदं भूरिति व्याहृतिं गायत्रं छन्दः त्रिवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तम्

प्रत्यायन (बोध) करायेगा। अन्तर्गडु (मध्य में आ टपकने वाले) स्फोट से क्या (क्या प्रयोजन सिद्ध होगा) ?

इस कारण अपौरुषेय, नित्य एवं विवक्षित अर्थ वाला होने से सम्पूर्ण वेदराशि एवं उसके अन्तर्गत ब्रह्मवेद (अथर्व वेद) की भी विवक्षित अर्थ वाला होने से व्याख्येयता सिद्ध हो जाती है।

(१२)

अथर्ववेद के अन्त में व्याख्यान का औचित्य

फिर भी क्यों यह सबवेदों के अन्त में व्याख्येय है ? वेदों के क्रमानुसार अभि-व्यक्ति का प्रतिपादन करने वाली श्रुति के अनुरोध से [ऐसा किया जा रहा है], यह हमारा उत्तर है। और वह (श्रुति) अथर्ववेद के पूर्व ब्राह्मण के प्रणव प्रशंसा के अवसर पर सुनी जाती है। "ब्रह्म ने पुष्कर में ब्रह्मा की सृष्टि की। वह सृष्ट हुआ ब्रह्मा चिन्ता को प्राप्त हुआ [कि] "मैं किस एक ही अक्षर के द्वारा समस्त कामनाओं, समस्त लोकों, समस्त देवताओं, समस्त वेदों, समस्त यज्ञों, समस्त शब्दों, समस्त वृष्टियों एवं समस्त स्थावर जङ्गम (चराचर) रूप प्राणियों का अनुभव करूँ।" उन्होंने [एतदर्थ] ब्रह्मचर्य का आचरण किया। उसने तीन वर्ण वाले, चार मात्रा वाले एवं सर्वव्यापी 'ओ३म्' इस अक्षर का दर्शन किया[1] इत्यादि। "उसकी प्रथम स्वरमात्रा से पृथिवी, अग्नि, ओषधि वनस्पतियों, ऋग्वेद, 'भू', यह व्याहृति, गायत्र छन्द, त्रिवृत स्तोम, प्राची दिशा एवं वसन्त ऋतु को"[2] इत्यादि के द्वारा आदि की तीन प्रणव मात्राओं के द्वारा आप्तव्य (प्रापणीय) ऋगादि का प्रति-पादन करके अन्त में समाम्नात किया है। "उस [प्रणव] की मकार मात्रा से

---

१. 'व' क, ख। २. 'पुष्करे' क, ख। ३. वृष्टिः
४. 'न्वभवेयेमिति' क, 'मान्वभवेयोमिति' ख। ५. 'द्विवर्णम्'

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋतुम्" इत्यादिना आद्याभिस्तिसृभिः प्रणवमात्राभिराम्नव्यान् ऋगादीन् प्रतिपाद्य अन्ते समाम्नातम्। "तस्य मकारमात्रयापश्चन्द्रमसम् अथर्ववेदं नक्षत्राण्यो३मिति स्वम् आत्मानम् आनुष्टुभं छन्दः एकविंशं स्तोमम्" इत्यादि तथा तैत्तिरीयकेऽपि ब्रह्मयज्ञप्रकरणे श्रूयते—"यद् ऋचोऽधीते पयसः कूल्या अस्य पितॄन् स्वधा अभिवहन्ति। यद् यजूंषि घृतस्य कूल्या। यत् सामानि सोम एभ्यः पवते। यद् अथर्वाङ्गिरसो मधोः कूल्याः" इति। तद् एवम् उदीरितरीत्या सर्वत्राथर्ववेदस्य चरमभावित्वात् तद्व्याख्यानस्य त्रयीव्याख्यानानन्तर्यम् उपपन्नम्॥

अथर्ववेद. शाखा (विचार)

तस्य एहिकामुष्मिकसकलपुरुषार्थपरिज्ञानोपायभूतस्य अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति। तद् यथा। पैप्पलादाः तौदा[2] मौदाः शौनकीया जाजला जलदा ब्रह्मवदा देवदर्शाश्चारणवैद्याश्चेति। तत्र शौनकीयादिषु चतसृषु शाखासु अनुवाकसूक्त-ऋगादीनां गोपथब्राह्मणानुसारेण पञ्चभिः सूत्रैर्विनियोगोऽभिहितः। तानि च सूत्राणि कौशिकम् वैतानम् नक्षत्रकल्पः आङ्गिरसकल्पः शान्तिकल्पश्चेति। तद् उक्तम् उपवर्षाचार्यैः कल्पसूत्राधिकरणे—

जल, चन्द्रमा, अथर्ववेद, नक्षत्र, 'ओ३म्' यह पद, अपनी आत्मा आनुष्टुभ् छन्द, एवं इक्कीस स्तोम को"[3] इत्यादि तथा तैत्तिरीयक के अन्तर्गत भी ब्रह्मयज्ञ के प्रकरण में।" जो ऋचाओं का अध्ययन करता है उसके पितरों की स्वधाओं को दूध की कूल्याएँ (नहरें या नदियाँ) अभिवहन करती हैं। जो यजुर्मन्त्रों का [अध्ययन] करता है उसके [पितरों की स्वधाओं को] घृत की कूल्याएँ [अभिवहन करती हैं]। जो साममन्त्रों का [अध्ययन] करते हैं उसके पितरों के लिए सोम पवमान होता है। जो अथर्वाङ्गिरसमन्त्रों का [अध्ययन] करता है उसके [पितरों की स्वधाओं को] मधु की कूल्याएं अभिवहन करती है।"[4] अतः इस रूप में कथन होने के अनुसार सर्वत्र अथर्ववेद के चरमभावी (अन्त में उल्लिखित) होने से उसके व्याख्यान का वेदत्रयीव्याख्यान के पश्चात् होना उपपन्न हो जाता है।

(१३)

अथर्ववेद की शाखाओं के विषय में विचार

उस इहलोक एवं परलोक के समस्त पुरुषार्थों के परिज्ञान के उपायभूत अथर्ववेद के नव भेद होते हैं, यथा—पैप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, वेददर्श एवंचारणवैद्य। इनमें से शौनकीय आदि चारों शाखाओं के अन्तर्गत अनुवाक, सूक्त, ऋक् आदि का गोपथब्राह्मण के अनुसार पांच सूत्रों के द्वारा विनियोग कहा है। वे सूत्र हैं—कौशिक, वैतान, नक्षत्रकल्प आङ्गिरसकल्प एवं शान्तिकल्प। यह कल्पसूत्राधिकरण के अन्तर्गत उपवर्षाचार्य के द्वारा कहा गया है—

Funding by IKS-MoE

---

१. 'वकार' क, ख। २. तौदो क, ख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः।
तुर्यं आङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पस्तु पञ्चमः[1] ॥ इति

तत्र साकल्येन संहितामन्त्राणां शान्तिकपौष्टिकादिषु कर्मसु विनियोगविधानात् संहिताविधिर्नाम कौशिकं सूत्रम्। तदेव इतरैः सूत्रैरुपजीव्यत्वात् प्रधानं च। एतेषु बहुषुसूत्रेषु अथर्ववेदप्रतिपाद्यानि कर्माणि विप्रकीर्णत्वाद् दुर्बोधानीति सुखाववोधाय तानीह संगृह्यन्ते। तत्र तावत् कौशिकसूत्रे क्रमेण प्रतिपाद्यान्येतानि कर्माणि।

(१४)

कौशिकसूत्रवर्णितकर्मनिरूपणम्।

आदौ स्थालीपाकविधानेन दर्शपूर्णमासविधिः। ततो मेधाजननानि। ब्रह्मचारिसांपदानि। ग्रामनगरदुर्गराष्ट्रादिलाभार्थानि। पुत्रपशुधनधान्यप्रजास्त्रीकरितुरगरथान्दोलिकादिसर्वसंपत्साधकानि जनानाम् एकमत्यसम्पादकानि सांमनस्यानि ततो राजकर्माणि। तानि च शत्रुहस्तित्रासनानि संग्रामजयसाधनानि इषुनिवारणार्थानि खड्गादिसर्वशस्त्रनिवारणानि परसेनामोहनोद्वेजनस्तम्भनोच्चाटनादीनि स्वसेनोत्साहपरिरक्षणाभयार्थानि संग्रामे जयपराजयपरीक्षार्थानि सेनापत्यादिप्रधानपुरुषजयकर्माणि परसेनासंचरणप्रदेशेषु अभिमन्त्रितपाशा-

"[प्रथम] नक्षत्रकल्प, [द्वितीय] वैतान, तृतीय संहिता-विधि, चतुर्थ आङ्गिरसकल्प एवं पञ्चम शान्तिकल्प है।"

यहाँ सम्पूर्णता के साथ संहिता मन्त्रों का शान्तिक पौष्टिक आदि कर्मों में विनियोग का विधान होने से संहिता-विधि कौशिकसूत्र [का ही] नाम है। वहीं अन्य सूत्रों के द्वारा उपजीव्य (उपजीव्य) होने से प्रधान भी है। इन बहुत से सूत्रों में अथर्ववेद में प्रति के द्वारा प्रतिपादित कर्म विप्रकीर्ण (यहाँ वहाँ बिखरे हुए) होने से दुर्ज्ञेय हैं अतः सुखपूर्वक जानने योग्य होने के लिए ये यहाँ संगृहीत किये जाते हैं। उनके अन्तर्गत कौशिकसूत्र के क्रमानुसार ये कर्म प्रतिपाद्य हैं।

(१४)

कौशिक सूत्र में कहे गये कर्मों का निरूपण

प्रारम्भ में स्थालीपाकविधान के द्वारा दर्शपूर्णमास विधि [प्रतिपादित] है। तत्पश्चात् [क्रमशः] मेधाजनन; ब्रह्मचारिसाम्पद; ग्राम, नगर, दुर्ग, राष्ट्र आदि के लाभार्थं - पुत्र, पशु, धनधान्य, प्रजा, स्त्री, हाथी, अश्व, रथ, झूला आदि समस्त सम्पदाओंके साधन भूत उपाय; मनुष्यों के एकमत्यसम्पादक सांमनस्यकर्म; तत्पश्चात् राजकर्म [वर्णित हैं] जो कि शत्रु हस्ती के त्रासन (भयसम्पादक कर्म); संग्राम में जय के साधनबाणों के निवारण की विधियाँ; खड्ग आदि समस्त शस्त्रों के निवारण की विधियाँ, शत्रु सेना के लिए मोहन, उद्वेजन, स्तम्भन, उच्चाटन आदि अपने सेना के परिरक्षण एवं अभय प्रदान करने की विधियाँ, संग्राम में

१. पञ्चक क, ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिकशा[1]प्रक्षेपणादीनि जयकामस्य राज्ञोरथस्यारोहणम् अभिमन्त्रितभैरीपटहादि-सर्ववादित्रताडनम् सपत्नक्षयकर्माणि शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशकानि राजाभिषेकः। पापक्षयार्थानि निर्ऋतिकर्माणि। चित्राकर्मादीनि। पौष्टिकानि। गोसमृद्धिकर्माणि। लक्ष्मीकराणि। पुष्ट्यर्थमणिबन्धनानि। कृषिपुष्टिकराणि। अनडुत्समृद्धिकराणि। गृहसंपत्कराणि नवशालाकर्मादीनि वृषोत्सर्जनम्। आग्रहायणीकर्म। जन्मान्तरकृतपापनिमित्ताचिकित्स्यविविधरोगभैषज्यानि। तत्र प्रथमं सर्वव्याधिभैषज्यं ज्वरातिसारबहुमूत्रादिभैषज्यानि शस्त्राद्यभिघातजरुधिर-प्रवाहनिरोधकानि। भूतप्रेतपिशाचापस्मारब्रह्मराक्षसबालग्रहादीनिवारणानि। वातपित्तश्लेष्मभैषज्यानि। हृद्रोगकामलां[1]श्वित्रनिवारणानि। संततजैका-हिकादिविषमज्वरराजयक्ष्मजलोदरनिवारणानि गवाश्वादीनां क्रिमिहराणि कन्दमूलसर्पवृश्चिकस्थावरजङ्गमविषनिवारणानि सिरोक्षिनासिकाकर्णजिह्वाग्रीवा-दिरोगभैषज्यानि ब्राह्मणाद्याक्रोशनिवारणानि गण्डमालादिविविधरोगभैषज्यानि। पुत्रादिकामस्त्रीकर्माणि। सुखप्रसवकर्माणि। गर्भाधानगर्भदृंहणपुंसवनादीनि सौभाग्यकरणानि। राजादिमन्युनिवारणानि अभीष्टसिद्ध्यसिद्धिविज्ञानानि।

जय एवं पराजय के परीक्षण की विधियाँ, सेनापति आदि प्रधान पुरुषों के जय प्राप्त कराने वाली विधियाँ, शत्रुसेना के सञ्चरण-प्रदेशों में अभिमन्त्रित पाश, असि (खड्ग), कशा का प्रक्षेपण, विजयेच्छुक राजा का रथारोहण, अभिमंत्रित भेरी, पटह आदि समस्त वाद्ययन्त्रों का ताडन (वादन) शत्रुक्षयकर्म [तथा] शत्रुओं द्वारा उत्सादित (निर्वासित) राजा का पुनः अपने राष्ट्र में प्रवेश तथा राजा के अभिषेक [सम्बन्धी मन्त्र वर्णित हैं]। (तदनन्तर) पापक्षय के लिये निर्ऋतिकर्म, चित्राकर्म आदि; पौष्टिक गोसमृद्धि कर्म, लक्ष्मी हेतुक (कर्म); पुष्ट्यर्थक मणिबन्धन, कृषि पुष्टिकरर, वृषभसमृद्धिहेतु, गृहसम्पत् हेतुक नवशाला-कर्म आदि (एवं) वृषोत्सर्जन, आग्रहायणी कर्म, जन्मजन्मान्तरों में किए गए पापवश सञ्जात असाध्य विविध रोगों से सम्बन्धित भैषज्य—जहाँ कि प्रथमतः समस्त व्याधियों का भैषज्य (चिकित्सा), ज्वरातिसार, बहुमूत्रादि के भैषज्य एवं शस्त्रादि के आघातवश निःसृत रुधिर के प्रवाह के निरोधक (भैषज्य वर्णित हैं, तदनन्तर), भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मार (मृगी), ब्रह्मराक्षस, बालग्रहादि के निवारक; वात, पित्त एवं श्लेष्मा (कफ) के भैषज्य; हृद्रोग, कामिला, श्वित्र के निवारण; निरन्तर बने रहने वाले ज्वर, एकाहिक आदि विषम ज्वर, राजयक्ष्मा, [एवं] जलोदर का निवारण; गो, अश्वादि के कृमि हारक [भैषज्य], कन्द-मूल, सर्प, वृश्चिक, स्थावर, जङ्गम [आदि] के विषनिवारक;

---

१. 'कशा' क, ख।

१. कामिला क, ख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दुर्दिनाशन्यतिवृष्टिनिवारणानि। सभाजयविवादजयकलहशमनानि। स्वेच्छातो नदीप्रवाहकरणानि। वृष्टिकर्माणि। अर्थोत्थापनकर्म। द्यूतजयकर्म। गोवत्स-विरोधनिवारणम्। अश्वशान्तिः। वाणिज्यलाभकर्म। स्त्रियाः पापलक्षण-निवारणम्। वास्तुसंस्कारकर्म। गृहप्रवेशकर्म। कपोतवायसाद्युपहतगृहशान्ति-विधिः। दुष्प्रतिग्राहायाज्ययाजनादिदोषनिवारणम्। दुःस्वप्ननिवारणम्। कुमारस्य पापनक्षत्रजननशान्तिः। ऋणापनोदनम्। दुःशकुनशान्तिः। आभि-चारिकाणि। परकृताभिचारनिवारणानि। स्वस्त्ययनानि आयुष्याणि। जातकर्म-नामकरणचूडाकरणोपनयनादीनि। एकाग्निसाध्याः काम्या यागाः ब्रह्मौदन-स्वर्गौदनाद्या द्वाविंशतिः सवयज्ञाः। क्रव्याच्छमनम्। आवसथ्याधानम्। विवाहः। पैतृमेधिकानि। पिण्डपितृयज्ञः। मधुपर्कः। पांसुरुधिरादिवर्षणयक्षराक्षसादिदर्शन-भूकम्पधूमकेतुचन्द्रार्कोपप्लवादिबहुविधोत्पातशान्तयः आज्यतन्त्रविधिः। अष्टका-कर्म। इन्द्रमहः। ततोऽध्ययनविधिरिति।

शिर, नेत्र, नासिका, कर्ण, जिह्वा, ग्रीवा आदि के रोगों के भैषज्य, ब्राह्मणादि के आक्रोश का निवारण, गण्डमाला आदि विविध रोगों के [भैषज्य] वर्णित हैं। तदनन्तर पुत्रादि की कामना वाली स्त्रियों के कर्म; सुख पूर्वक प्रसवहेतु कर्म; गर्भाधान, गर्भदृंहण, पुंसवन आदि सौभाग्यकारक, राजा आदि के क्रोध के निवारक, अभीष्ट की सिद्धि या असिद्धि [से सम्बन्धित] विज्ञान। दुर्दिन (वर्षा), अशनि, अतिवृष्टि [आदि] के निवारक, सभा के मध्य में जय, विवाद में जय, वज्रपात कलह शमन, स्वेच्छया नदी के प्रहाव विधायक, वृष्टि से सम्बन्धित कर्म, अर्थोत्पादन से सम्बन्धित कर्म, द्यूतक्रीडा में विजय [प्रदायक] कर्म, गो एवं वत्स में विरोध का निवारण, अश्व की शान्ति, वाणिज्य लाभप्रद कर्म, स्त्री के पाप (दुष्ट) लक्षण का निवारण, वास्तुसंस्कार कर्म, गृहप्रवेश कर्म, कपोत, वायस (काक) इत्यादि के द्वारा उपहृत गृह-शान्ति की विधि, दुष्प्रतिग्राह, अयाज्ययाजन आदि दोष का निवारण, दुःस्वप्न निवारण, कुमार (बालक) के पाप (दुष्ट) नक्षत्र जनन की शान्ति, ऋणपूर्ति, दुःशकुनों की शान्ति, अभिचारिक कर्म, अन्यों (शत्रुओं) के द्वारा किए गए अभिचार का निवारण, स्वस्त्ययन, आयुष्य कर्म; जातकर्म नामकरण, चूडाकरण, उपनयन आदि; एकाग्नि द्वारा साध्य काम्य यज्ञ, ब्रह्मौदन, स्वर्गौदन आदि बाईस सवयज्ञ; क्रव्यात् (अग्नि) का शमन; आवसथ्य का आधान; विवाद; पैतृमेधिक कर्म, पिण्डपितृयज्ञ, मधुपर्क, पांसु (धूलि), रुधिर आदि की वर्षा, यक्ष, राक्षसादि का दर्शन, भूकम्प, धूमकेतु, चन्द्र, सूर्योपप्लव आदि अनेक प्रकार के उपद्रवों की शान्तियाँ, आज्यतन्त्र विधि; अष्टका कर्म। इन्द्रमह [आदि कर्म वर्णित है]; तदनन्तर अध्ययन विधि है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१५)

वैतानिकसूत्रकर्मनिरूपणम्

तथा वैतानसूत्रे दर्शपूर्णमासादिषु अयनान्तेषु त्रयीविहितकर्मसु ब्रह्मा ब्राह्मणाच्छंसो आग्नीध्रः पोतेति चतुर्णाम् ऋत्विजां कर्तव्यं प्रतिपाद्यते। तत्र अनुज्ञानुमन्त्रणादीनि ब्रह्मणः। शस्त्रादीनि ब्राह्मणाच्छंसिनः। आग्नीध्रस्य अन्वाहार्यश्रवणप्रस्थितयाज्यादीनि। पोतुः प्रस्थितयाज्यादीनि। इति विभागः। तत्र अयं कर्मक्रमः। प्रथमं दर्शपूर्णमासौ। ततोऽग्न्याधानम्। अग्निहोत्रम्। आग्रयणेष्टिः। चातुर्मास्यानि। वैश्वदेववरुणप्रघाससाकमेधशुनासीरीयाणि। पशुयागः। अग्निष्टोमोक्थ्यषोडश्यतिरात्रात्मकः प्रकृतिभूतश्चतुःसंस्थः सोमयागः। वाजपेयः। अप्तोर्यामः। अग्निचयनम्। सौत्रामणी। मैत्रावरुण्यामिक्षेष्टिः। गवामयनम्। राजसूयः। अश्वमेधः। पुरुषमेधः। सर्वमेधः। बृहस्पतिसवगोसवादय एकाहाः सोमयागाः। व्युष्टिद्विरात्रप्रकृतयोऽहीनाः रात्रिसत्राणि। सांवत्सारिकाण्ययनानि। दर्शपूर्णमासायनानीति॥

(१६)

नक्षत्रकल्पसूत्रकर्मनिरूपणम्

नक्षत्रकल्पेऽपि प्रथमं कृत्तिकादिनक्षत्रपूजाहोमादि। ततोऽद्भुतमहाशान्तिः। नैर्ऋतकर्म। अमृताद्या अभयान्तास्त्रिंशन्महाशान्तयो निमित्तभेदेन प्रतिपादिताः। तत्र दिव्यान्तरिक्षभौमेषु उत्पातेषु अमृताख्या महाशान्तिः गतायुषां पुनर्जीवनाय

(१५)

वैतानसूत्र के कर्मों का निरूपण

इसी प्रकार वैतानसूत्र में दर्शपूर्णमासादि अयनसत्र पर्यन्त [निष्पन्न होने वाले] वेदत्रयी द्वारा विहित कर्मों के अन्तर्गत "ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र एवं पोता" इन चारों ऋत्विजों का कर्तव्य प्रतिपादित होता है। उनमें अनुज्ञा अनुमन्त्रण आदि ब्रह्मा के शस्त्र आदि ब्रह्मणाच्छंसी के, अन्वाहार्य, क्षपण, प्रस्थित, याज्य आदि आग्नीध्र के तथा प्रस्थित याज्या आदि पोता के कर्म हैं। यही उनके कर्मों का विभाग है।

वहाँ कर्मों का यह क्रम है। सर्वप्रथम 'दर्श' और 'पूर्णमास', तत्पश्चात् आन्याधान, अग्निहोत्र, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय, पशुयाग, अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी एवं अतिरात्र के रूप में प्रकृतिभूत चार संस्थाओं वाला सोमयाग, वाजपेय, अप्तोर्याम, अग्निचयन, सौत्रामणी, मैत्रावरुण्यामिक्षेष्टि, गवामयन, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, बृहस्पतिसव, गोसव आदि एक दिन की अवधि वाले सोमयाग, व्युष्टिद्विरात्र प्रकृति वाले अहनि रात्रिसत्र, सांवत्सरिक अयनयाग दर्शपूर्णमास याग का वर्णन है।

(१६)

नक्षत्रकल्पसूत्रों के कर्मों का निरूपण

नक्षत्र कल्प में भी सर्व प्रथम कृत्तिकादि नक्षत्र पूजा होम आदि वर्णित है। तदनन्तर अद्भुत महाशान्ति, नैर्ऋत कर्म अमृत से प्रारम्भ होकर अभयपर्यन्त तीस

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वैश्वदेवी । अग्निभयनिवृत्तये सर्वकामावाप्तये चाग्नेयी । नक्षत्रग्रहोपसृष्टभयार्तं रोगगृहीतानां तच्छान्तये भार्गवी । ब्रह्मवर्चसकामस्य वस्त्रशयनाग्निज्वलने च ब्राह्मी । राज्यश्रीब्रह्मवर्चसकामस्य बार्हस्पत्या । प्रजापश्वन्नलाभाय प्रजाक्षयनिवृत्तये च प्राजापत्या । शुद्धिकामस्य सावित्री । छन्दोब्रह्मवर्चसकामस्य गायत्री । संपत्कामस्य अभिचरतोऽभिचर्यमाणस्य च आङ्गिरसी । विजयबलपुष्टिकामस्य परचक्रोद्वेजनकामस्य च ऐन्द्री । अद्भुतविकारनिवृत्तिकामस्य राज्यकामस्य च माहेन्द्री । धनकामस्य धनक्षयनिवृत्तिकामस्य च कौवेरी । विद्यातेजोधनायुष्कामस्य आदित्या । अन्नकामस्य वैष्णवी । भूतिकामवास्तुसंस्कारकर्मणोर्वास्तोष्पत्या । रोगार्तस्य आपद्ग्रस्तस्य च रौद्री । विजयकामस्य अपराजिता । यमभये याम्या । जलभये वारुणी । वात्याभये वायव्या । कुलक्षयनिवृत्तये संतत्याख्या । वस्त्रक्षयनिवृत्तये त्वाष्ट्री । बालस्य व्याधिनिवृत्तये कौमारी । निर्ऋतिगृहीतस्य नैर्ऋती । बलकामस्य मारुद्गणी । अश्वक्षयनिवृत्तये गान्धर्वी । गजक्षयशान्तये पारावती ।

महाशान्तियाँ निमित्त भेद से प्रतिपादित हैं। उनमें दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौम (भूमि सम्बन्धी) उत्पात होने पर अमृत नामक महाशान्ति, आयु गत हो जाने पर पुनर्जीवन प्रदान करने के अर्थ 'वैश्वदेवी', अग्निभय के निवृत्त होने एवं समस्त कामनाओं की प्राप्ति होने के लिए 'आग्नेयी', नक्षत्र एवं ग्रहों के उपसर्ग से प्राप्त भय से 'आर्त' एवं रोगों से ग्रस्त प्राणियों के तत्सम्बन्धी शान्ति के अर्थ 'भार्गवा', ब्रह्मतेज की कामना करने वाले के लिये वस्त्र, शयन एवं अग्नि के प्रज्वलन के लिए 'ब्राह्मी', राज्यलक्ष्मी एवं ब्रह्मतेज [दोनों] की कामना करनेवाले के लिए 'बार्हस्पत्या', प्रजा, पशु एवं अन्नलाभ तथा प्रजा (सन्तति) के विनाश की निवृत्ति के अर्थ 'प्राजापत्या', शुद्धि की कामना करने वाले के लिए 'सावित्री', छन्दस् (वेद) एवं ब्रह्मतेज की कामना करने वाले के लिए 'गायत्री', सम्पत्ति की कामना करने वाले, अभिचरण करने वाले एवं अभिचर्यमाण होने वाले के लिए 'आङ्गिरसी', विजय, बल एवं पुष्टि की कामना वाले तथा शत्रुसमूह को उद्विग्न करने की कामना वाले के लिए 'ऐन्द्री', अद्भुत (अपूर्व या असामान्य विकार [या रोग] की निवृत्ति की कामना वाले तथा राज्य की कामना वाले के लिए 'माहेद्री', धन की कामना करने बालें तथा जन नाश के निवारण की कामना वाले के लिए 'कौबेरी', विद्या, तेज, धन एवं आयु की कामना वाले के लिए 'आदित्या', अन्न की कामना वाले के लिए 'वैष्णवी', भूति (वैभव या कल्याण) की कामना करने वाले तथा वस्तु (शिल्प) संस्कार रूप कर्म करने वाले के लिए 'वास्तोष्पत्या', रोगों से आर्त तथा आपत्तियों से ग्रस्त के लिए 'रौद्री', विजय की कामना वाले के लिए 'अपराजिता', यम से भय होने पर 'याम्या', जल से भय होने पर 'वारुणी', वात्या (आँधी तथा तूफान) से भय होने पर 'वायव्या', वंश नाश के निवारण के लिए 'सन्तत्याख्या', वस्त्रों के विनाश की

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिकामस्य पार्थिवी। भयार्तस्य अभयाख्या महाशान्तिः। आसां तन्त्रभूता महाशान्तिश्चेति ॥

(१७)

आंगिरसकल्पकर्मनिरूपणम्

तथा अङ्गिरसकल्पे आभिचारकर्मादौ कर्तृकारयितृसदस्यानां स्वात्मरक्षाकरणम्। अभिचारोपयुक्तदेशकालमण्डपकर्तृकारयितृदीक्षादिधर्मसमिदाज्यादिसंभारनिरूपणादिकम्। ततः आभिचारिककर्माणि। परकृताभिचारनिवारणादीन्यन्यान्यपि कर्माणि ॥

(१८)

शान्तिकल्पकर्मनिरूपणम्

शान्तकल्पेऽपि प्रथमं वैनायकग्रहग्रहीतलक्षाणानि। तच्छान्तये संभाराहरणम्। अभिषेकवैनायक होमाः। तत्पूजानिधानम्। आदित्यादिनवग्रहयज्ञादिकमिति।

(१९)

अथर्वपरिशिष्टेराज्याभिषेकानुष्ठानविधयः

एतेषु कल्पेष्वनुक्तानि यानि राजाभिषेकोपयुक्तद्रव्यप्रकृतिद्रव्यपरिग्रहपुरोहितवरणादीनि परिशिष्टोक्तानि तान्यपि अनुक्रम्यन्ते। प्रथमं राजाभिषेकः। प्रातः प्रातर्वस्त्रगन्धालङ्कारसिंहासनाश्वगजान्दोलिकाखड्गध्वजछत्रचामरादीनां तत्तन्मन्त्राभिमन्त्रितानां राज्ञे प्रदानादीनि पुरोहितकर्माणि। सुवर्णधेनुतिल-

---

निवृत्ति के लिए 'त्वाष्ट्री', बालक की व्याधि निवृत्ति के लिए 'कौमारी', निर्ऋति (पूतना आदि) के द्वारा गृहीत के लिए 'नैर्ऋती', बल की कामना वाले के लिए 'मारुद्गणी', अश्व क्षय की निवृत्ति के लिए 'गान्धर्वी', हाथी के क्षय होने के निवारण के लिए 'पारावती', भूमि की कामना वाले के लिए 'पार्थिवी' तथा भय से आर्त के लिए 'अभया' नामक महाशान्ति है। इनकी तन्त्रभूता महाशान्ति भी होती है।

(१७)

आङ्गिरस कल्प के कर्मों का निरूपण

इसी भाँति आङ्गिरस कल्प के अन्तर्गत आभिचारक कर्म आदि में करने वाले तथा कराने वाले सदस्यों की स्वात्मरक्षा के उपाय भूत कर्म कहे गये हैं। अभिचार के उपयुक्त देशकाल, मण्डप के करने तथा कराने वाले की दीक्षा आदि धर्म, समिधा, आज्य (घृत) आदि सम्भार का निरूपण आदि [वर्णित हैं]। तदनन्तर आभिचारिक (अभिचार सम्बन्धी) कर्म तथा पर (शत्रुओं) द्वारा किए गये अभिचार के निवारण आदि अन्य कर्मों का निरूपण हुआ है।

(१८)

शान्ति कल्प के कर्मो का निरूपण

शान्तिकल्प में भी सर्वप्रथम वैनायकग्रह द्वारा गृहीत मनुष्य] के लक्षण तथा उनकी शान्ति के लिए सम्भार का आहरण, [उक्त है, तदन्तर] अभिषेक वैनायक होम, उसकी पूजा का विधान एवं आदित्यादि नव ग्रह के यज्ञादि वर्णित हैं।

(१९)

अथर्वपरिशिष्ट को राज्याभिषेक सम्बन्धी अनुष्ठान विधियाँ

इन (उपरि निर्दिष्ट) कल्पों में अनुक्त जो राज्याभिषेक के उपयुक्त द्रव्य, प्रकृति द्रव्य, परिग्रह, पुरोहित वरण इत्यादि परिशिष्ट में कहे गये हैं उनका भी अनुक्रमण

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिदानादीनि राज्ञः प्रतिदिवसकर्तव्यानि। पूजितपिष्टमय्या सदीपया रात्रिप्रतिमया राज्ञो नीराजनम् रक्षाकरणं च इत्येवमादीनि पुरोहितस्य रात्रिकर्माणि। राज्ञः पुष्पाभिषेकः। राज्ञो रात्रौ आरात्रिकविधानम्। प्रातः प्रातर्घृतावेक्षणम्। कपिलादानम्। तिलधेनुदानम्। रसादिधेनवः कृष्णाजिनदानम्। भूमिदानम्। तुलापुरुषविधिः। आदित्यमण्डलाकारापूपदानम्। हिरण्यगर्भविधिः। हस्तिरथदानम्। कनकाश्वादिदश महादानानि। अश्वरथदानम्। गोसहस्रविधिः। वृषोत्सर्गः। कोटिहोमः। लक्षहोमः। अयुतहोमः। घृतकम्बलविधिः। तटाकप्रतिष्ठा। पशुपतव्रतम्। इत्येवमादीनि अन्यान्यपि दानव्रतादीनि।

इति सपरिशिष्टपञ्चकल्पप्रतिपाद्यानां कर्मणां दिङ्मात्रेण अयम् अनुक्रमः। विशेषस्तु तत्तत्सूक्तविनियोगावसरे वक्ष्यते।

(२०)

कर्मणां त्रैविध्यम्

एतानि च त्रिविधानि नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन। तत्र जातकर्मादीनि नित्यानि। दुर्दिनाशनिनिवारणाश्वशान्त्यद्भुतकर्माणि च नैमित्तिकानि। मेधा-

---

करते हैं। सर्वप्रथम राजा का अभिषेक [जिसके अनन्तर प्रातःकाल में प्रातःकालीन वस्त्र, गन्ध, आभरण, सिंहासन, अश्व, गज, आन्दोलिका (झूला), खड्ग, ध्वजा, चामरादि को विविध मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके राजा को प्रदान करना आदि पुरोहित के कर्म, स्वर्ण, गौ, तिल, पृथिवी, दान आदि राजा के प्रति दिवस करणीय कर्म, पूजित पिष्ट से (निर्मित), दीप के सहित, रात्रि की प्रतिमा के द्वारा राजा का नीराजन (आरती) एवं रक्षाकरण इत्यादि ये सब पुरोहित के रात्रिकर्म [वर्णित है, तत्पश्चात्] पुष्पों द्वारा अभिषेक, रात्रि में राजा का आरात्रिक विधान, प्रातःकाल में प्रातःकालीन घृत का अवेक्षण (दर्शन) कपिला गौ का दान, तिल गौ का दान, रसादि धेनु एवं कृष्णचर्म का दान, भूमि दान, तुला पुरुष का विधान, सूर्यमण्डल के आकार का अपूप (पूए का) दान, हिरण्यगर्भ विधि, हस्ती एवं रथ का दान, स्वर्णमय अश्व आदि दश महादान, अश्व युक्त रथ का दान, गो सहस्र विधि, वृषोत्सर्ग, कोटिहोम, लक्ष होम, अयुत होम, घृत कम्बल विधि, तालाब की प्रतिष्ठा, पशुपत व्रत, इत्यादि अन्यान्य व्रतदानादि [प्रतिपादित हैं]।

इस प्रकार परिशिष्ट सहित पाँच कल्पों में प्रतिपाद्य कर्मों के दिङ्मात्र (सङ्केतमात्र) से यह अनुक्रम [निर्दिष्ट है]। इसके विशेष रूपों को विविध सूक्तविनियोगों के अवसर पर बतलायेंगे।

(२०)

कर्मों के तीन प्रकार

ये (उक्त) कर्म नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य-भेद से तीन प्रकार के हैं। उनमें जातकर्मादि नित्य हैं। दुर्दिन, वज्र के निवारण अश्व शान्ति एवं अद्भुत कर्म नैमित्तिक हैं। मेधाजनन ग्रामसाम्पद आदि काम्य

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जननग्रामसांपदादीनि काम्यानि । अत्र नित्यानां नैमित्तिकानां च अवश्यानुष्ठेयता । अकरणे प्रत्यवायस्मरणात् । तथाहि ।

नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायजिघांसया । इति

काम्यानां तु इच्छातः प्रवृत्तिः ॥

एतेषां ग्रामाद् बहिः प्रागुदग्देशे महानदीतटाकाद्युत्तरकूलेऽनुष्ठानम् । "पुरस्तादुत्तरतोऽरण्ये कर्मणां प्रयोगः उत्तरत उदकान्ते" इति कौशिक सूत्रात् पुंसवनादीनां तु नित्यानां गृह ऐवेति रुद्रभाष्यकारमतम् । कालस्तु पर्वद्वयं पुण्यनक्षत्रयुक्तं तिथ्यन्तरं वा । अद्भुतकर्मणां तु तत्तन्निमित्तानन्तरमेव । तथा चोक्तम्—

अमावास्या पौर्णमासी पुण्यनक्षत्रयुक् तिथिः ।
एत एव त्रयः कालाः सर्वेषां कर्मणां स्मृताः ॥
अद्भुतानां सदा कालम् आरम्भः सर्व कर्मणाम् ॥ इति

आभिचारिकाणां तु ग्रामाद् दक्षिणदिशि कृष्णपक्षे कृत्तिकानक्षत्रे प्रयोग इ त विशेषः । तथा च कौशिकं सूत्रम् । "आभिचारेषु दक्षिणतः संभारम् आहृत्य

कर्म हैं। इनमें नित्य एवं नैमित्तिकों का अनुष्ठान करना आवश्यक है, क्योंकि इनके न करने पर स्मृतियों ने प्रत्यवाय (दोष) बतलाया है, यथा—

"प्रत्यवाय को विनष्ट करने की इच्छा से नित्य नैमित्तक कर्म करे।"

काम्यकर्मों में तो इच्छानुसार लोगों की प्रवृत्ति होती है।

इन [काम्यादि] कर्मों का अनुष्ठान, "पूर्व अथवा उत्तर दिशा में किसी वन में अथवा] जलाशय के उत्तरवर्ती तट पर इन कर्मों का प्रयोग करना चाहिए इस कौशिक सूत्र के अनुसार ग्राम के बाहर पूर्व या उत्तर दिशा में महानदीतट-आदि के उत्तर किनारे पर करना चाहिए। पुंसवन आदि नित्य कर्मों का तो गृह में हा [अनुष्ठान होना चाहिए] यह रुद्र भाष्यकार का मत है। उपयुक्त समय दोनों (अमावास्या एवं पूर्णिमा) पर्व अथवा पुण्यनक्षत्र से युक्त अन्य तिथि [समझना चाहिए]। अद्भुत कर्मो का अनुष्ठान तो विभिन्न निमित्तों के अनन्तर ही जाता है। जैसा कि उक्त है—

अमावास्या, पूर्णिमा एवं पुण्यनक्षत्रयुक्त अन्य तिथि ये ही तीन समय समस्त कर्मों के लिए [उचित] स्मरण किए गए हैं। किन्तु अद्भुत समस्त कर्मों का अनुष्ठान तो समस्त कालों में आरम्भ किया जा सकता है।"

आभिचारिक कर्मों का प्रयोग तो ग्राम के दक्षिण दिशा में कृष्णपक्ष के अन्तर्गत कृत्तिकानक्षत्र में होता है, यह विशेष बात है। जैसा कि कौशिकसूत्र है—

अङ्गिरस कल्पोक्त अभिचार सम्बन्धी कर्मों में सामग्री को दक्षिण दिशा में लाकर····"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
BVBSSMV

आङ्गिरसम्" इत्यादि। अत्र आङ्गिरसमिति आङ्गिरसकल्पोक्तमित्यर्थः। एतेषां कर्मणां प्राच्योदीच्याङ्गानि दर्शपूर्णमासवत् कार्याणि। इमौ दर्शपूर्णमासौ व्याख्यातौ दर्शपूर्णमासाभ्यां पाकयज्ञाः" इति सूत्रकारवचनात्। अत्र पाकयज्ञ-शब्देन सर्वम् आथर्वणं कर्मोच्यते।

(२१)

आथर्वणकर्मणांद्वैविध्यम्

तच्च द्विविधम्। आज्यतन्त्रं पाकतन्त्रं चेति। यत्र प्रधानं हविः आज्यं तद् आज्यतन्त्रम्। यत्र चरुपुरोडाशादिकं तत् पाकतन्त्रम्। आज्यतन्त्रे अयम् अनुष्ठानक्रमः। प्रथमम् "अव्यसश्च" इति कर्तुर्जपः बर्हिर्लवनं वेदिः उत्तरवेदिः अग्निप्रणयनम् अग्निप्रतिष्ठापनम् व्रतग्रहणम् पवित्रकरणम् पवित्रेणेध्मप्रोक्षणम् इध्मोपसमाधानम् बर्हिःप्रोक्षणम् ब्रह्मासनम् ब्रह्मस्थापनम् स्तरणम् स्तीर्णप्रोक्षणम् आत्मासनम् उदपात्रस्थापनम् आज्यसंस्कारः स्रुवग्रहणम् ग्रहग्रहणम् पुरस्ताद्धोमाः आज्यभागौ। "सविता प्रसवानाम् इति कर्मणि अभितोभ्यातानैराज्यं जुहुयात्" इति सूत्रकारवचनात् अभ्यातानानि एतदन्तं पूर्वतन्त्रम्॥

यहाँ अङ्गिरस का अभिप्राय 'आङ्गिरसकल्पोक्त' से है। इन कर्मों के प्राची और उदीची अङ्गों को, "ये दर्शपूर्णमास व्याख्यात हुए, दर्शपूर्णमासों के द्वारा पाकयज्ञ....[२] इस सूत्रकार वचन के अनुसार दर्शपूर्णमासवत् करना चाहिए। यहाँ पाकयज्ञ शब्द के द्वारा समस्त आथर्वण कर्म कहे जाते हैं।

(२१)

आथर्वण कर्यो का द्वैविध्य

वह [आथर्वण कर्म] दो प्रकार का है। आज्यतन्य एवं पाकतन्त्र। जहाँ प्रधान हविष् आज्य (घृत) होता हैं वह आज्यतन्त्र होता है। [दूसरी ओर] जहाँ चरु पुरोडाश आदि प्रधान हवि] होता है वह पाकतन्त्र होता है।

आज्यतन्त्र विषयक अनुष्ठान क्रम यह है। सर्वप्रथम "अव्यस का भी"[३] इस सबके अनुसार कर्ता कृत जप, (तदनन्तर) बर्हिषों का लवन, (कुशों को काटना) वेदि और उत्तरवेदि [का निर्माण], अग्नि का प्रणयन, अग्नि का प्रतिष्ठापन, व्रतग्रहण, पवित्रकरण, पवित्र द्वारा इध्मों (समिधाओं) का प्रोक्षण इध्मों का उपसमाधान। बर्हिष् का प्रोक्षण ब्रह्मा का आसन (बैठना), ब्रह्म का स्थापन, स्तरण (बिछाना) स्तीर्ण (बिछाये हुए) का प्रोक्षण, आत्मासन (स्वयं बैठना), जलपात्र की स्थापना, आज्य संस्कार, स्रुवा का ग्रहण, ग्रह का ग्रहण होम से पहले आज्य भाग (का हवन) तथा "प्रसवों का सविता (प्रेरक)"[१] इस मन्त्र के अनुसार कर्म काल में दोनों ओर अभ्याता न मन्त्रों के द्वारा आज्य का हवन करे"[२] इस सूत्रकार के वचन के अनुसार [अन्त में] अभ्यातान हैं। यहाँ तक पूर्वतन्त्र है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततो यथोपदेशं प्रधानहोमः ॥ तत उत्तरतन्त्रम् अभ्यातानानि पार्वणहोमः समृद्धिहोमाः संनतिहोमः स्विष्टकृद्धोमः सर्वप्रायश्चित्तीयहोमः स्कन्नहोमः "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" इति होमः स्कन्नास्मृतिहोमौ संस्थितिहोमाः चतुर्गृहीतहोमः बर्हिर्होमः संस्रावहोमः विष्णुक्रमाः व्रतविसर्जनम् दक्षिणादानम् ब्रह्मोत्थापनम् इति। पाकतन्त्रे तु अभ्यातानाभाव एव विशेषः। अन्यत् सर्वं समानम्। तथा च गोपथब्राह्मणम्—

आज्यभागान्तं प्राकतन्त्रम् ऊर्ध्वं स्विष्टकृता सह।
हवींषि यज्ञ आवापो यथा तन्त्रस्य तन्तवः ॥ इति

अद्भुतकर्मणाम् आज्यतन्त्रत्वेऽपि पाकतन्त्रवद् आभ्यातानाभावः। यद् आह केशवः। "पाकतत्रेष्वभ्यातानानि न भवन्ति, अद्भुतेषु न भवन्ति, अन्यत्र सर्वत्र भवन्ति" इति ॥

इति सायणाचार्यकृता अथर्ववेदभाष्यभूमिका समाप्ता

तत्पश्चात् उपदेशानुसार प्रधानहोम [बतलाते हैं] इसके बाद उत्तरतन्त्र में अभ्यातान, पार्वणहोम, समृद्धिहोम, संनतिहोम, स्विष्टकृत्होम, सर्वप्रायश्चित्तीय-होम, स्कन्नहोम, "पुनः मुझे इन्द्रियत्व प्राप्त हो।"[3] इसके अनुसार होम, स्कन्न एवं स्मृतिहोम, स्कन्नहोम, चतुर्गृहीतहोम, बर्हिहोम, संस्नावहोम, विष्णुक्रम, व्रत-विसर्जन, दक्षिणादान [एवं] ब्रह्मोत्थापन। पाकतन्त्र में तो 'अभ्यातानों का अभाव' होना ही (वैशिष्टय) है। अन्य सभी (आज्य तन्त्र के) समान होते हैं। जैसा कि गोपथब्राह्मण में उक्त है—

"आज्यभागपर्यन्त पाकतन्त्र ऊर्ध्व में (आगे चलकर) स्विष्टकृत् के साथ हवियाँ रूप होकर यज्ञ में आवाय अप होते हैं जैसी कि तन्त्र की परम्परा है।"

अद्भुत कर्म भी यद्यपि आज्यतन्त्र रूप होते हैं, किन्तु इनमें भी पाकतन्त्र की ही भाँति अभ्यातानों का अभाव होता है। जैसा कि केशव ने कहा है— पाकतन्त्रों में अभ्यतान नहीं होते हैं, अद्भुत कर्मो में [भी] नहीं होते हैं, अन्यत्र सर्वत्र होते हैं।"[4]

इस प्रकार सायणाचार्यकृत अथर्ववेदभाष्यभूमिका समाप्त हुई।

Bhavan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
1047

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Bhawan's Sri S... Vidya Sansk... Mahavid... Vidya B...

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE